# आतंक

H
813.3
V 442 A

सुदर्शन वशिष्ठ

H
813.3
V442A

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SIMLA

# आतंक

लेखक :

सुदर्शन वशिष्ठ

Sudarshan Vashisth

Gayatri Prakashan

गायत्री प्रकाशन

CATALOGUED

65359
20.12.13

H
813.3
V442A

Library IIAS, Shimla
H 813.3 V 442 A
00065359

ॐ


| | |
|---|---|
| प्रकाशक | **गायत्री प्रकाशन** |
| लेखक | **सुदर्शन वशिष्ठ**<br>बी. सी. पब्लिक स्कूल<br>जुब्बल (शिमला) |
| उपन्यास | **आतंक** |
| कॉपीराइट | **लेखकाधीन** |
| मुद्रक | **गर्ग प्रिण्टर्स**<br>देवी भवन<br>महात्मा गांधी मार्ग<br>अजमेर (राज०) |
| मूल्य | ४·०० रुपये |

स्वर्गीय नानाजी

के नाम

जिन्होंने

मन की ऊसर भूमि में

महाभारत का बीज

रोपण किया

सींचा

अपनी मृदुवाणी से

बड़ा किया !

# ललित कला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी

## जम्मू–कश्मीर (जम्मू)

### ( हिन्दी विभाग )

सम्पादक : श्यामलाल शर्मा

क्रमांक 409
दिनांक 30.5.73

श्री सुदर्शन वशिष्ठ
ग्राम-अरला : पोस्ट-भट्टू-समूला
पालमपुर (कांगड़ा) हि. प्र.

प्रिय बन्धुवर,

महाभारत की पृष्ठभूमि पर रचित आपका उपन्यास 'आतंक' पढ़ा। बड़ा प्रिय लगा। पालमपुर की धरती की राष्ट्रभाषा हिन्दी को प्रिय देन है।

इस उपन्यास को पढ़ते स्वर्गीय क. मा. मुन्शीजी की याद आने लगी, जिन्होंने पौराणिक आधार पर गुजराती भाषा को विपुल सम्पत्ति प्रदान की है तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी को समृद्ध किया है।

यदि आपका यह उपन्यास डोगरी में होता तो मातृभाषा का गौरव बढ़ता और उसके साहित्य की वृद्धि में बहुमूल्य योगदान होता।

इसका यह अर्थ नहीं कि राष्ट्रभाषा की सेवा में यह पुष्प किसी प्रकार कम महत्ता का है। हिन्दीं में होने के कारण इस का विस्तार देशव्यापी भी हो जाता है।

भाषा सुन्दर है। प्रांजल है। मधुर है। दिलचस्पी बनी रहती है। वर्णन सजीव है और प्रवाह अबाध गति से चलता है। युद्ध की विभीषिका को जम्मू-

कश्मीर का व्यक्ति और पाकिस्तान तथा चीन की सीमाओं से लगते प्रदेशों में रहने वाला व्यक्ति भली-भाँति जानता है। आजके 'आतंकमय' वातावरण में यह उपन्यास सबको रुचेगा। मानस की सतह पर उठती तरंगें मर्यादा को भंग नहीं करतीं। प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह भी मर्यादा की सीमा को एकदम छिन्न-भिन्न नहीं करता। विद्रोह तोड़-फोड़ की ओर प्रेरित नहीं करता, सामञ्जस्य सुझाता है। महाभारत के समय के जनसाधारण की मानसिक स्थिति तथा चिन्तन बड़े सुन्दर ढंग से सामने आता है।

यह लघु, परन्तु सुन्दर उपन्यास हिन्दी कथा-साहित्य में सुन्दर वृद्धि करेगा।

**श्यामलाल शर्मा**

## हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी, शिमला-९

13 अक्तूबर, 1973.

अनुसंधान अधिकारी

हि. प्र. कला, संस्कृति
एवं भाषा अकादमी, शिमला-9

प्रिय वशिष्ठजी,

आपका उपन्यास 'आतंक' पढ़ने का सुअवसर मिला। निश्चय ही आपने पर्याप्त परिश्रम के पश्चात् इस कथानक को सजा-संवार कर प्रस्तुत किया है। कथानक सजीव है और पात्रों ने अपने धर्म को निभाया है। पौराणिक पृष्ठभूमि पर यह लघु उपन्यास ठीक उतरता है।

आपका

**बंशीराम शर्मा**

# राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर

[ राजस्थान सरकार द्वारा स्थापित : सन् 1958 ई० ]

क्रमांक ४७८८ | दिनांक ६/१२/७२.

## सराह्य प्रयास

'आतंक' उपन्यास की पाण्डुलिपि देख गया हूँ। पौराणिक आख्यानों को अधुनातन जीवन परिवेश के परिप्रेक्ष्य में देखने, परखने तथा उनको सृजन-क्रम में लेने का आपका यह प्रयास सराह्य कहा जाएगा। भाषा संयत है और सम्प्रेषणीय। बधाई।

निदेशक

संलग्न : **आतंक** उपन्यास की मूल पाण्डुलिपि

**ओंकार पारीक**
राजस्थान साहित्य अकादमी
उदयपुर।

---

**Sahitya Akademi National Academy of Letters**

९ मार्च, १९७३

श्री सुदर्शन वशिष्ठ
ग्राम : अरला
पो० भट्टू-समूला
पालमपुर (कांगड़ा) हि. प्र.

प्रिय महोदय,

आपके २० फरवरी के कृपापत्र के साथ आपके उपन्यास 'आतंक' की पाण्डुलिपि प्राप्त हुई, धन्यवाद।

आपका प्रयास अभिनन्दनीय है।

पाण्डुलिपि की प्रति इसी पत्र के साथ लौटाई जा रही है। कृपया प्राप्ति स्वीकार करें।

भवदीय
**डॉ० भारत भूषण अग्रवाल**
सहायक मन्त्री

[illegible]

[illegible]

---

[illegible]

[illegible]

# भूमिका

श्री सुदर्शन वशिष्ठ द्वारा लिखित पौराणिक लघु उपन्यास 'आतंक' अनेक दृष्टियों से एक नया प्रयास है। उपन्यास में महाभारत कालीन समाज का चित्रण किया गया है। हमारे पुराणों में तत्कालीन संस्कृति की झलक न मिलती हो ऐसी बात नहीं है, परन्तु पौराणिक कथाओं तथा पात्रों में अलौकिकता का समावेश स्वाभाविक होता है; अतः साधारण समाज के सम्बन्धित अंशों को विशेष परिप्रेक्ष्य में दिग्दर्शित किया जाता है। लोकनायकों को महानात्मायें माना जाना हमारे धर्मग्रन्थों की विशिष्टता है। कालान्तर में ये लोकनायक हमारे विविध देवी-देवताओं के रूप में सम्मानित हुए हैं। क्योंकि समाज हर पीढ़ी के साथ "बाल भाव" से ही अपना जीवन आरम्भ करता है, अतः पौराणिक एवम् लोककथाओं का महत्व चिरस्थायी है। पुराणों में कल्पना का प्राधान्य है और इतिहास तथा अलौकिकता का समन्वय इस प्रकार किया गया है कि हम कथानकों को सत्यासत्य की कसौटी पर कसने से पूर्व सभी सम्भव स्रोतों का अध्ययन करने के लिए विवश हो जाते हैं।

यद्यपि पुराणकथाओं की रचना तथा उपन्यास के प्रस्तुतीकरण में विधागत भिन्नता होती है, पर समग्र पुराण-कथाओं के गम्भीर अध्ययन के पश्चात् जो चित्र हमारे मानस पटल पर अंकित होता है वह उस समाज की मान्यताओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिये पर्याप्त सामग्री है।

प्रस्तुत उपन्यास 'आतंक' महाभारत कालीन संस्कृति को उभार कर हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। कथानक विस्तृत भावभूमि पर आरोपित

किया गया है और शैली की सजीवता के दर्शन यत्र-तत्र मोहक लगते हैं। त्रिगर्तप्रदेश से जाजलि कुरुक्षेत्र मे जाता है और वहाँ के लोगों में वीर भाव का संचार करता है। यही नहीं, हमारी संस्कृति के उज्ज्वल स्तम्भों; यथा, धार्मिक भावना, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवम् अपरिग्रह का भी हृदयग्राही विवेचन हुआ है।

पौराणिक पृष्ठभूमि पर रचे गये इस लघु उपन्यास के लेखक वशिष्ठ अपने प्रयास में सफल रहे हैं और यह आशा की जा सकती है कि वे भविष्य में मूल्यवान कृतियाँ साहित्य-संसार को दे सकेंगे। हमारे सांस्कृतिक मूल्य तथा उपन्यास-लेखन की प्रक्रियायें वर्तमान गतिशील समाज की मान्यताओं के साथ बदल रहे हैं, परन्तु जो प्राचीन है उसके मूल्य को झुठलाया नहीं जा सकता। उसका अपना स्थान है, ऐसा स्थान जिसे "वर्तमान" नहीं ले सकता। इसलिये वह शाश्वत और चिरन्तन है। इसी दृष्टिकोण के साथ 'आतंक' पठनीय तथा संग्रहणीय है।

**डॉ॰ वंशीराम शर्मा**
एम. ए., पी-एच. डी.
अनुसंधान अधिकारी
हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी,
परी महल, शिमला—9

# निवेदन

महाभारत के महान् पात्रों, महान् विभूतियों पर अनेक मूर्धन्य साहित्यकारों ने लेखनी चलाई है। महामानवों को पुनः पुनः संजाया-संवारा गया है। परन्तु उस काल के जन-जीवन का विशेष वर्णन सम्भवतया नहीं हुआ। इस लघु उपन्यास में उस युग के जन-जीवन को चित्रित करने का प्रयास किया है। उपन्यास के घटनाप्रधान कथानक का तालमेल महाभारत की घटनाओं से बिठाया गया है। आधुनिक परिवेश को ध्यान में रख कर यह प्रयत्न किया गया है कि इस क्रम में घटनाएँ अरोपित न हो जाएँ। इस उद्देश्य में कहाँ तक सफल हो पाया हूँ—यह यो स्वय नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि 'महाभारत' में जन-जीवन का वर्णन नहीं है; कथा मुख्यत: राजपरिवार, महर्षियों, महान् पात्रों के इर्द-गिर्द ही घूमती है तथापि किन्हीं स्थलों पर साधारण प्रजा के जीवन का अन्दाजा लगाया जा सकता है।

साधारण प्रजाजनों की वेशभूषा सादी थी। पुरुष कन्धे पर उत्तरीय डालते और कमर के नीचे अधोवस्त्र। स्त्रियाँ साड़ी या धोती पहनतीं। सभी वस्त्र प्राय: अनसिले होते थे। क्योंकि समाज में अति बहुमूल्य वस्त्राभूषणों वाले (राजपुरुष) तथा एक वस्त्रा (ऋषि, योगी) विद्यमान थे; अत: साधारण वर्ग नि:सन्देह किसी विशेष तड़क-भड़क या आभूषणों के प्रति आकर्षित नहीं हो पाता था।

खान-पान बनाने में कुशल गृहणियाँ स्वादिष्ट भोजन पकातीं। कुछ लोग (म्लेछ,-व्याध) मांसाहारी भी थे। ब्राह्मणों को छोड़ क्षत्रिय आदि वर्गों में मद्यपान भी प्रचलित था। अधिकतर लोग, विशेषकर ब्राह्मण परिवार सात्विक भोजन करते। दूध तथा दूध से बने पदार्थों का अधिक प्रयोग किया जाता। भात, खिचड़ी, दही, तिल आदि का विशेष महत्व था। भोजन का स्तर, प्रकार आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर करता। महात्मा विदुर ने कहा :

"धनोत्मत्त पुरुषों के भोजन में मांस की, मध्यम श्रेणी वालों के भोजन में गोरस की तथा दरिद्रों के भोजन में तेल की प्रधानता होती है।" आर्थिक स्तरानुसार ही सोने-चांदी, ताम्बे-मिट्टी के बर्तन प्रयुक्त होते।

निवास स्थानों में दिव्यसभाओं, भव्य अट्टालिकाओं से लेकर साधारण आश्रमों तक का वर्णन मिलता है। राजप्रासादों में सभी ऋतुओं का आनन्द भिन्न-भिन्न कक्षों में भोगा जा सकता था। नगरों में भी विशाल भवन थे। ग्रामों में साधारण लोग आश्रमनुमा घरों में रहते। व्याध, ग्वाले, संन्यासी वृक्षों के नीचे ही रात बिता देते। वेदपाठी ब्राह्मण स्वाध्याय, यज्ञादि कर्म करते हुए वन में आश्रम बना कर रहते। इनमें कुछ सपरिवार भी रहते। यह समाज-शिक्षा की दृष्टि से उच्चवर्ग था जिससे पुरोहित, आचार्य चुने जाते। रामायण-युग की अपेक्षा इस काल में समाज का पतन हो रहा था। नैतिक स्तर गिर रहा था। धर्म पग-पग पर अर्थ और काम द्वारा पराजित हो रहा था। चार आश्रमों का निर्वाह नियमता से नहीं किया जाता था। ब्रह्मचर्य आश्रम में ही कई नवयुवक विवाह कर लेते। राजकुमारों के विवाह अल्पायु में ही हो जाते। गृहस्थ आश्रम का विस्तार हो गया था। लोग सम्भवतः पर्याप्त जीवन भोग कर अन्तिम वर्षों में ही संन्यास लेते। वेद में कही गई सौ वर्ष की आयु को भी कोई-कोई ही जी पाता।

समाज में कर्म के अनुसार वर्ग बने थे जो पैतृक हो गये थे। ब्राह्मण सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन नहीं कर पाते। लोगों की धारण शक्ति क्षीण होते जान ही श्रीकृष्णद्वैपायन ने वेदों का विस्तार किया था। अतः ब्राह्मणों में वेदपाठ के अनुसार एकवेदी, द्विवेदी, त्रिवेदी आदि वर्ग बने। धनुर्वेद के ज्ञाता ब्राह्मणों में क्षत्रिय-भाव प्रबल था। कुछ ब्राह्मण वेदाध्ययन नहीं करते थे। नीति का पालन भी कोई-कोई ही कर पाते। वास्तव में सनातन ऋषि सनत्सुजात के बताये ब्राह्मण के व्रतों या स्मृतियों के आधार पर ब्राह्मण के गुणों पर कोई बिरला ही आधिपत्य जमा पाता। ऋषियों के समुदाय में ब्रह्मज्ञानी कोई ही बन पाता। अधिकतर ब्राह्मण अपढ़ थे या केवल बहुपाठी।

राजदरबार तथा नगर-ग्रामों में पुरोहित का विशेष महत्व था। पुरोहित का कार्य पथ-प्रदर्शक के समान था।

राजपरिवारों में अधिकतर विवाह स्वयंवर द्वारा ही होते। कन्या को बलपूर्वक हर ले जाने की प्रथा भी थी।

साधारण प्रजा में युवक कन्या के लिये कन्या के पिता से याचना करते। प्रेम-सम्बन्ध को लम्बा न कर बिना किसी झिझक के युवक-युवतियाँ विवाह कर लेते। राजपरिवारों, सामन्तों और धनिकों को छोड़ समाज में सम्भवतः एक पत्नी और एक पति परिवार ही थे। विवाह-सम्बन्ध में किसी वर्ग विशेष या कर्म का एक होना नहीं देखा जाता। प्राथमिकता वर-वधू की इच्छा को ही दी जाती। ऋषि, ब्राह्मण कुमार प्रायः राजपरिवारों से कन्या की याचना कर लेते थे।

समाज में नारी की स्थिति गौरवमयी थी। प्रायः कन्याएँ पिता के घर में ही शिक्षा ग्रहण कर लेतीं। नीति-शास्त्र का पूर्ण ज्ञान पा लेतीं। परिवार में स्त्रियों का विशेष आदर था। महात्मा विदुर ने कहा है : "स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी कही गई हैं; वे अत्यन्त सौभाग्यशालिनी, पूजा के योग्य, पवित्र तथा घर की शोभा हैं। अतः इनकी विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिये।"

स्त्रियों के विरोधी, निन्दक, उन्हें अपशब्द कहने वाले को दोषी माना जाता। भीष्मजी ने कहा है : "जहाँ स्त्रियों का आदर होता है, वहाँ देवता लोग प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं।"

फिर भी समाज में वेश्याओं का अभाव न था। राजपरिवारों, धनिकों के घर में दासियों की स्थिति शोचनीय थी।

सुशिक्षित परिवारों में कार्य-विभाजन कर दिया जाता। कार्य की महत्ता के अनुसार सुयोग्य सदस्य को कार्य सौंपा जाता। विदुर नीति में कहा है : "अन्तःपुर की रक्षा का कार्य पिता को सौंप दे, रसोई-घर का प्रबन्ध माता के हाथ में दे दे, गौओं की सेवा में अपने समान व्यक्ति नियुक्त करे और कृषि कार्य स्वयं करे। सेवको द्वारा वाणिज्य करे और पुत्रों द्वारा ब्राह्मण-सेवा।"

अतिथि का बहुत सत्कार किया जाता। उसे पूजा-योग्य, देव-समान कहा गया है।

लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती था। पशुपालन और वाणिज्य का भी विशेष महत्व था। इसके अतिरिक्त सेनाजीवी, राजसेवक, वैद्य, शिल्पी, थवई, शस्त्र-निर्माता, कुम्भकार आदि भी जीविका कमाते। खेती हल-बैलों द्वारा की जाती। राज्य की ओर से किसानों को सुविधाएँ प्राप्त थीं।

माल इधर से उधर ले जाने के लिये ग्रामों में बैलगाडियों का प्रयोग किया जाता। नगरों में मुख्य वाहन रथ था। कुशल घोड़े द्रुत गति से बात की बात में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाते। ऊँट, बैल, घोड़े, खच्चरों पर भी माल ढोया जाता। राजमार्ग और अन्य सार्वजनिक मार्ग पर्याप्त चौड़े थे। माल के आयात-निर्यात पर कर लिया जाता। राजा धनिकों से मेल रखता।

धन का अनुमान गौधन से लगाया जाता। राजा के कोष में स्वर्ण-रत्नों के अतिरिक्त गौधन का अधिक महत्व होता। लडाई में प्राय: शत्रु का गौधन हरने का प्रयत्न किया जाता। दुर्योधनादि कौरव राजा विराट के साथ युद्ध छेड़ने के लिये उसका गौधन हर ले जाते हैं। जनसाधारण की एकमात्र बहुमूल्य वस्तु गौ ही थी। लुटेरे गौएँ हरना अधिक पसन्द करते थे।

स्वर्ण का परिमाण एक भार से किया जाता। यह एक भार सम्भवत: एक खच्चर का बोझ होता था। राजा युधिष्ठिर ने हिमालय से धन लाती बार (आश्वमेधिक पर्व) एक-एक बड़े बक्से में आधा भार सोने के बर्तन भरे थे। अन्न का भार एक मुट्ठी से आरम्भ होता। आठ मुट्ठी का एक किंचित, आठ किंचित का एक पुष्कल और चार पुष्कल का एक पूर्ण पात्र गिना जाता। इसी प्रकार दिन-रात का विभाजन निमेष, काष्ठा, कला और मुहूर्त में किया गया था। दोनों हाथों को फैलाने पर जितनी लम्बाई होती है, उसे एक व्याम कहते थे। महाबली भीम उपकीचकों का वध करने के लिये (विराट पर्व) दस व्याम लम्बा वृक्ष उखाड़ते हैं।

सैनिकों को पर्याप्त वेतन दिया जाता। कलाकारों, शिल्पियों का भी आदर किया जाता। कुछ लोग भिक्षावृत्ति से भी पेट पालते।

ग्राम का प्रशासन ग्रामाध्यक्ष या अधिपति के हाथ में होता। ग्रामाध्यक्ष (भीष्म-युधिष्ठर संवाद : शान्ति पर्व) दस ग्रामों के अधिपति के अधीन होता। इसी तरह बीस ग्रामों वाला सौ ग्रामों वाले के अधीन। नगरों में नगराध्यक्ष होते। ग्रामाध्यक्ष के कार्य-निरीक्षण हेतु मन्त्री नियुक्त होते। गुप्तचरों द्वारा भी उनके व्यवहार का पता रखा जाता। समाज में अपराधियों; चोरों, लुटेरों का अभाव न था। ग्राम में अपराधियों पर नियन्त्रण ग्रामाध्यक्ष रखता और राज्य में दण्डपात अपराधियों का पता गुप्तचरों द्वारा लगाया जाता। सर्वत्र गुप्तचरों का जाल-सा फैला रहता। ये सभी अन्धे, बहरे और भिक्षुक बन जाते और तरह-तरह के वेष धारण करते। महात्मा बिदुर ने कहा है : "ब्राह्मण वेदों से, राजा गुप्तचरों से और सर्वसाधारण आँखों से देखा करते हैं।"

समाज में, विशेषत: नगरों में वैश्यालय और मदिरालय भी थे। प्रजा को भ्रष्टाचार से बचाने हेतु इनके संचालकों को दण्डित किया जाता।

वह समाज भी आज की तरह कुछ विश्वासों से आक्रांत था। उस युग की भी अपनी मान्यताएँ थीं जैसे—मार्ग में चलते समय परिचित वृक्षों और सभी चौराहों तथा प्रतिष्ठित स्थानों को दाहिनी ओर छोड़ कर जाना; उदय-अस्त, ग्रहण और मध्याह्न के समय सूर्य की ओर न देखना, दूसरे के पहने वस्त्र, जूते न पहनना, पैर पर पैर न रखना, मलिन दर्पण में मुँह न देखना, सदा पूर्व की ओर मुँह करके मौन होकर भोजन करना, फटे आसन पर न बैठना आदि। परन्तु प्राय: सभी विश्वास मान्य और तर्कसंगत थे। जिन्हें अन्ध-विश्वास नहीं कहा जा सकता। वे निर्धारित नियम ही थे जो किसी न किसी आधार पर बने थे।

राज्यों में आन्तरिक शान्ति बहुत कम थी। प्राय: सभी नरेशआपस में लड़ते रहते। कहीं-कहीं तो एक स्थान पर युद्ध होता और कहीं नगर-ग्रामों को भी क्षति पहुँचती। शक्तिशाली राजा ही प्रजा को बाहरी आक्रमण से

बचाए रखते थे। संकटकाल में धनिकों से धन ले लिया जाता और सभी से तन-मन-धन की याचना की जाती। जिस राज्य में अयोग्य राजा के कारण कर अधिक बढ़ जाते, बार-बार आक्रमण होता रहता; ऐसे राज्य को, राजा को प्रजा त्याग देती थी। प्रजा जंगलों में या दूसरे राज्य में जा बसती। एक राज्य से दूसरे राज्य में जाना, बसना जन साधारण के लिये वर्जित न था। जनता द्वारा राजा को हटाया जाना उतना आसान नहीं रहा था।

मृतकों को जलाने की प्रथा थी। अधिकतर गृहस्थ अन्त में संन्यास ले वन चले जाते और वहीं प्राण त्याग देते। अतः ग्राम में या घर में कोई आकस्मिक मृत्यु ही मरता। युद्ध में शवों की परवा नहीं की जाती और युद्ध समाप्ति पर ही उनका दाह-संस्कार किया जाता। युद्ध के दौरान शवों को गीदड़-कुत्ते भी खा जाया करते और अनेक योद्धाओं के शव ढूंढे नहीं मिलते। अन्य तर्पणादि संस्कार वैदिक रीति से किये जाते।

हेमन्त, 1972

—सुदर्शन वशिष्ठ

# १

सुरेणु नदी के किनारे बसा वृकस्थल नामक ग्राम। लगभग बीस-बाईस घरों का समूह। चारों ओर से घनी अमराइयों की छाया में अपना अस्तित्व बनाये हुए है। ग्राम के बीचों-बीच एक चौड़ा पथ है तथा सभी घरों को जाती अपनी-अपनी राह है। सभी ग्रामपथ दोनों ओर से लताओं, छोटे-छोटे पेड़ों से घिरे हैं। प्रायः सभी घर एकसे हैं। ग्राम से बाहर पूर्व की ओर एक पथ जाता है। पश्चिम की ओर नदी के पार वन है जो समीप घना नहीं है, परन्तु आगे सघन होता गया है। दक्षिण की ओर खेत हैं, उत्तर की ओर वीरान पहाड़ी।

भगवान् भास्कर अपना कर्त्तव्य पूरा कर लुप्त हो चुके थे। संध्या धीरे-धीरे कालिमा के आवरण में लिपटी जा रही थी।

ग्राम के पुरोहित पुष्कर सन्ध्योपासना से निवृत हो भोजन के लिये अपने आश्रमनुमा घर के दूसरे कक्ष में गये जहाँ उनकी पत्नी मिश्रकेशी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। आसन पर बैठते हुए वे पत्नी से बोले : "कल हम सभी धान ले आएँगे। मैंने समंग से कहा है। वह बैल ले आएगा और कल का दिन हमारे यहाँ काम करेगा।"

"इस वर्ष वृष्टि कम होने से धान कुछ कम निकलने की आशा है। फिर भी हमारे लिये तो पर्याप्त ही होंगे। आपने कुछ और भी सुना? केशिनी कह रही थी कि इन्द्रोत का सेवक आया था और कर रूप में एक पूर्ण पात्र[1] धान मांग रहा था।"

पत्नी की बात सुनकर पुष्कर चौंके। "इन्द्रोत! कर मांग रहा था!

---

[1] दो सौ छप्पन मुट्ठी।

आश्चर्य है ! लगता है, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। हमसे, ब्राह्मणों से कर मांग रहा है ! उसे ज्ञात है, हमारे पास कितना अन्न होता है। यदि ग्राम के श्रद्धालु हमें न दें तो वर्ष भर का निर्वाह कैसे हो सकता है !.... अच्छा, कल मैं स्वयं उसके पास जाऊँगा।"

मिश्रकेशी ने भोजन परोसते हुए केशिनी को आवाज दी और कहा : "पता नहीं यह क्या करती रहती है। हर समय पढ़ती ही रहती है। आपने इसे पढ़ना-लिखना क्या सिखाया यह तो खान-पान भी भूल गई।"

"अभी शैशव ही है न। स्वयं सम्भल जाएगी।"

पुष्कर भोजन से पहले देवता, पितर, पक्षियों को अन्न रखने लगे।

पुष्कर विचारमग्न हो घर की ओर जा रहे थे। वे अभी-अभी ग्रामाध्यक्ष इन्द्रोत से साक्षात्कार कर आये थे।

"पुष्करजी नमस्कार ! कहाँ गये थे ?" ग्राम के क्षत्रिय वसुदान ने सामने से आते पुष्कर को देख एक ओर होते हुए कहा।

"ग्रामाध्यक्ष के पास। कल मुझसे कर लेने उसने सेवक भेजा था।"

यह सुन वसुदान के चेहरे पर आश्चर्य के चिह्न उभर आए।

"आपसे कर लेने ! ग्राम के एकमात्र ब्राह्मण परिवार से कर ! भगवन् ! मुझे लगता है इसका काल समीप आ गया है। मैंने यह भी सुना है कि इस बार यह कर की मात्रा भी बढ़ा रहा है।"

"हाँ, हाँ। बढ़ा रहा है। कहता था, मुख्याध्यक्ष के आदेश आए हैं कि राज्य-कोष में कमी पड़ने के कारण कर की मात्रा बढ़ा दी गई है।"

वसुदान क्षण भर चुप रहा, फिर बोला : "मुझे लगता है द्विजवर ! यह झूठ का आश्रय लेकर लोभवश यह कर्म कर रहा है। राज्य-कोष ऐसे शान्ति के समय में कैसे रिक्त होगा ! इस समय समस्त कुरुजांगल देश सम्पन्न है। उधर पाण्डवों के संरक्षण में इन्द्रप्रस्थ भी दिन-प्रतिदिन उन्नति कर रहा है। ग्रामाध्यक्ष का कथन सम्भव नहीं लगता।"

"उसे घमण्ड हो गया है। अब वह राजा के समान आदेशात्मक स्वर में बात करता है।"

"कुछ करना चाहिए ब्रह्मन् ! इस विषय में आपने क्या सोचा है ?"

"कुछ समय धैर्य धारण करते हैं। हो सकता है उसके व्यवहार में परिवर्तन आ जाए।"

"अच्छा, देख लेते हैं।" कह कर वसुदान पुष्कर से आज्ञा ले आगे बढ़ गया।

पुष्कर सोचते जा रहे थे, सत्य ही इन्द्रोत को अपने पद का घमण्ड हो गया है। लोभवश वह ग्रामवासियों को कष्ट दे रहा है। गत वर्ष भी तो उसने अधिक कर लिया था; और ग्रामवासियों से अनेक भेटें स्वयं मांग कर ली थीं।

पुष्कर आकर बरामदे में बैठ गये। मिश्रकेशी दूध ले आई। "सुना है, इन्द्रोत भव्य अट्टालिका बनवाने की योजना बना रहा है।" मिश्रकेशी ने बैठते हुए कहा।

"अट्टालिका !" पुष्कर का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया।

"हाँ, समंग कह रहा था। इन्द्रोत ने सभी शूद्रों को आज्ञा दी है कि अपने-अपने कार्य से निपट कर उसके पास जाया करें। सुना है, वह इन्द्रप्रस्थ से मयासुर के वंश का कोई शिल्पी मंगवा रहा है।"

पुष्कर अकस्मात् उत्तेजित हो गये : "उसे क्या अधिकार है शूद्रों से काम लेने का ?···· उसके पास इतना धन कहाँ से आया कि वह भवन-निर्माण कर रहा है ?···· कल ही हमें ग्राम की समिति को बुलाना होगा।" पुष्कर शीघ्रता से दूध पीकर पुनः बाहर जाने लगे।

दूसरी संध्या : ग्राम के मध्य सभी ग्रामीण एकत्रित हुए। ग्रामाध्यक्ष इन्द्रोत भी आया। बूढ़े बरगद के नीचे ग्रामाध्यक्ष, पुष्कर, वसुदान आदि बैठ गये। आस-पास खुले स्थान में अन्य ग्रामीण जम गये। सूर्य छिपने में अभी देर थी। फिर भी एक शीत, लहर सब ओर फैल गई थी।

ग्रामाध्यक्ष को स्थिति का भान हो गया था। परन्तु सत्ता हाथ में होने

आश्चर्य है ! लगता है, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। हमसे, ब्राह्मणों से कर मांग रहा है ! उसे ज्ञात है, हमारे पास कितना अन्न होता है। यदि ग्राम के श्रद्धालु हमें न दें तो वर्ष भर का निर्वाह कैसे हो सकता है !.... अच्छा, कल मैं स्वयं उसके पास जाऊँगा।"

मिश्रकेशी ने भोजन परोसते हुए केशिनी को आवाज दी और कहा : "पता नहीं यह क्या करती रहती है। हर समय पढ़ती ही रहती है। आपने इसे पढ़ना-लिखना क्या सिखाया यह तो खान-पान भी भूल गई।"

"अभी शैशव ही है न। स्वयं सम्भल जाएगी।"

पुष्कर भोजन से पहले देवता, पितर, पक्षियों को अन्न रखने लगे।

पुष्कर विचारमग्न हो घर की ओर जा रहे थे। वे अभी-अभी ग्रामाध्यक्ष इन्द्रोत से साक्षात्कार कर आये थे।

"पुष्करजी नमस्कार ! कहाँ गये थे ?" ग्राम के क्षत्रिय वसुदान ने सामने से आते पुष्कर को देख एक ओर होते हुए कहा।

"ग्रामाध्यक्ष के पास। कल मुझसे कर लेने उसने सेवक भेजा था।"

यह सुन वसुदान के चेहरे पर आश्चर्य के चिह्न उभर आए।

"आपसे कर लेने ! ग्राम के एकमात्र ब्राह्मण परिवार से कर ! भगवन् ! मुझे लगता है इसका काल समीप आ गया है। मैंने यह भी सुना है कि इस बार यह कर की मात्रा भी बढ़ा रहा है।"

"हाँ, हाँ। बढ़ा रहा है। कहता था, मुख्याध्यक्ष के आदेश आए हैं कि राज्य-कोष में कमी पड़ने के कारण कर की मात्रा बढ़ा दी गई है।"

वसुदान क्षण भर चुप रहा, फिर बोला : "मुझे लगता है द्विजवर ! यह झूठ का आश्रय लेकर लोभवश यह कर्म कर रहा है। राज्य-कोष ऐसे शान्ति के समय में कैसे रिक्त होगा ! इस समय समस्त कुरुजांगल देश सम्पन्न है। उधर पाण्डवों के संरक्षण में इन्द्रप्रस्थ भी दिन-प्रतिदिन उन्नति कर रहा है। ग्रामाध्यक्ष का कथन सम्भव नहीं लगता।"

"उसे घमण्ड हो गया है। अब वह राजा के समान आदेशात्मक स्वर में बात करता है।"

"कुछ करना चाहिए ब्रह्मन् ! इस विषय में आपने क्या सोचा है ?"

"कुछ समय धैर्य धारण करते हैं। हो सकता है उसके व्यवहार में परिवर्तन आ जाए।"

"अच्छा, देख लेते हैं।" कह कर वसुदान पुष्कर से आज्ञा ले आगे बढ़ गया।

पुष्कर सोचते जा रहे थे, सत्य ही इन्द्रोत को अपने पद का घमण्ड हो गया है। लोभवश वह ग्रामवासियों को कष्ट दे रहा है। गत वर्ष भी तो उसने अधिक कर लिया था; और ग्रामवासियों से अनेक भेटें स्वयं मांग कर ली थीं।

पुष्कर आकर बरामदे में बैठ गये। मिश्रकेशी दूध ले आई। "सुना है, इन्द्रोत भव्य अट्टालिका बनवाने की योजना बना रहा है।" मिश्रकेशी ने बैठते हुए कहा।

"अट्टालिका !" पुष्कर का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया।

"हाँ, समंग कह रहा था। इन्द्रोत ने सभी शूद्रों को आज्ञा दी है कि अपने-अपने कार्य से निपट कर उसके पास जाया करें। सुना है, वह इन्द्रप्रस्थ से मयासुर के वंश का कोई शिल्पी मंगवा रहा है।"

पुष्कर अकस्मात् उत्तेजित हो गये : "उसे क्या अधिकार है शूद्रों से काम लेने का ?···· उसके पास इतना धन कहाँ से आया कि वह भवन-निर्माण कर रहा है ?···· कल ही हमें ग्राम की समिति को बुलाना होगा।" पुष्कर शीघ्रता से दूध पीकर पुनः बाहर जाने लगे।

दूसरी संध्या : ग्राम के मध्य सभी ग्रामीण एकत्रित हुए। ग्रामाध्यक्ष इन्द्रोत भी आया। बूढ़े बरगद के नीचे ग्रामाध्यक्ष, पुष्कर, वसुदान आदि बैठ गये। आस-पास खुले स्थान में अन्य ग्रामीण जम गये। सूर्य छिपने में अभी देर थी। फिर भी एक शीत, लहर सब ओर फैल गई थी।

ग्रामाध्यक्ष को स्थिति का भान हो गया था। परन्तु सत्ता हाथ में होने

पर उसे कुछ भी भय नहीं रहा था। उसने उठकर सबको सम्बोधित करते हुए कहा : "ग्रामवासियो ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि आज असमय सभी यहाँ एकत्रित क्यों हुए हैं ? मुझे बुलाने का क्या प्रयोजन है ?" इतना कहकर वह सबकी तरफ देखने लगा। सभी एक-दूसरे की ओर ताकने लगे। तभी पुष्कर ने उठकर कहा : "ग्रामाध्यक्ष महोदय ! सभी ग्रामीणों का आपके प्रति रोष बढ़ रहा है। इसी से अवगत कराने के लिये आपको कष्ट दिया है। आप पर कुछ आरोप लगाए गये हैं। सुनिए !····प्रथम यह कि आपने कर की मात्रा बढ़ा दी है। द्वितीय यह कि आप प्रजा से भेंट-रूप में कई वस्तुएँ ले रहे हैं। तृतीय यह कि आपने भवन-निर्माण के लिये श्रमिकों को आदेश देकर बुलाया है। चतुर्थ, हम यह जानना चाहते हैं कि आपके पास इतनी सम्पत्ति कहाँ से आई, जो आप अट्टालिका-निर्माण हेतु नगर से शिल्पी मंगवा रहे हैं ?"

इन्द्रोत को जीवन में पहली बार भरी सभा में ललकारा गया था। उसके गुप्त रहस्य खोल दिये गये थे। सबके समक्ष उसे नंगा कर दिया गया था। उसका मुँह क्रोध से लाल हो गया। वह उठकर ऊँची आवाज में बोला : मैं स्वयं कुछ समय से अनुभव कर रहा हूँ कि प्रजा का व्यवहार मुझसे बदलता जा रहा है। तरह-तरह की बातें मेरे विरुद्ध फैल रही हैं। यदि आप मुझे आरोपों के स्पष्टीकरण के लिये बाध्य कर रहे हैं, तो सुनिए !····।" क्षण भर रुक कर उसने सारी सभा में दृष्टि दौड़ाई। सभी उसे देख रहे थे। वह पुन: बोला : "कर की मात्रा बढ़ाने के लिये मुझे मुख्याध्यक्ष से आदेश आए हैं। ग्रामीणों से कोई भी भेंट मैंने स्वयं याचना कर या आदेश देकर नहीं ली और न ही मैं उन्हें कार्य पर आने के लिये बाधित कर रहा हूँ। भवन-निर्माण मेरा अपना निजी कार्य है। कोई इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता।" इतना कह कर वह सभा से निकल गया।

कुछ क्षण सभा में सन्नाटा रहा। सूर्य अस्ताचल की ओर सरक रहा था। बरगद की छाया लम्बी हो रही थी। सभी दूर होते इन्द्रोत को देख रहे थे।

पुष्कर ने कहा : "अब बन्धुओ ! क्या सम्मति है ?"

वसुदान ने उठ कर कहा : "प्रातः ही मैं अपने पुत्र वज्रदत्त को मुख्याध्यक्ष के पास भेजता हूँ। सब ज्ञात हो जाएगा।"

"ठीक है ! अब सभी अपने-अपने स्थानों को जाएँ। आगामी कार्यक्रम से आप सभी को अवगत कराया जाएगा।" पुष्कर बोले।

सभी उठ खड़े हुए और अपने-अपने घर की राह ली।

●

सुरेणु के पार गहन वन में दो व्यक्ति बढ़े आ रहे थे। एक की वेशभूषा भिखारी की-सी थी—फटे-पुराने कपड़े, कन्धे पर झोली, हाथ में लाठी। बिखरे केश, नंगे पांव, शरीर पर मैलभरी धूल।

दूसरा साधारण, किन्तु स्वच्छ परिधान में था—सिर पर पगड़ी, शरीर पर चोगा-सा तथा अधोवस्त्र। हाथ में लम्बी लाठी लिए हुए वह सेवक-वर्ग का जान पड़ता था।

वन की सघनता समाप्त होने लगी। गौओं के रम्भाने के स्वर स्पष्ट सुनाई देने लगे। सेवक प्रतीत होने वाले पुरुष ने दूसरे से कहा : "बन्धु ! अब हमें अलग हो जाना चाहिये।···· तुम घर-घर जाकर प्रजा की सम्मति जानने का यत्न करो। मैं ग्रामाध्यक्ष के घर जाकर देखता हूं, क्या सच ही वह अट्टालिका बनवा रहा है !"

"ठीक है। मैं तो भिक्षा पा लौट जाऊँगा। तुम वेतन लेकर ही आना।" दूसरे ने अर्थपूर्ण मुस्कान के साथ कहा। "अच्छा, कल्याण हो !"

"कल्याण हो !" दोनों ने अलग-अलग राह से गांव की ओर बढ़ना आरम्भ किया।

भोजन करने से पहले मिश्रकेशी ने कुतूहल से कहा : "आज दिन के

तीसरे पहर एक भिक्षुक आया था। उसने भोजन की इच्छा प्रकट की। केशिनी ने स्वयं बनाकर उसे खिलाया। वह पर्याप्त समय तक यहाँ विश्राम करता रहा। केशिनी पता नहीं उससे क्या-क्या वार्तालाप करती रही!"

पुष्कर चौंके : "भिक्षुक! भिक्षुक और इस देश में! बहुत समय से भिक्षुक देखने में नहीं आया। देश की प्रजा में सभी सम्पन्न हैं।....सम्भव है, बाहर से आया हो।"

"केशिनी कह रही थी, इन्द्रोत ने एक और सेवक रख लिया है। किसी दूसरे देश से आया है।" "हमारी समृद्धि देख बाहर के देशों से बहुत से लोग आ रहे हैं।" कह कर पुष्कर बलिवैश्वदेव करने लगे।

अगले दिन प्रातः ही सम्पूर्ण ग्राम में यह समाचार विद्युत की भाँति कौंध गया कि ग्रामाध्यक्ष को मुख्याध्यक्ष के सैनिक पकड़ ले गये हैं और उससे ग्रामाध्यक्ष का पद भी छीन लिया है।

मध्याह्न में : जो व्यक्ति ग्रामाध्यक्ष के पास सेवक बनकर आया था, ग्राम में ढोल पीटकर ऊँचे स्वर में कह रहा था :

"कुछ विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि ग्रामाध्यक्ष इन्द्रोत प्रजा से निश्चित कर से अधिक कर लेते थे और प्रजा को कष्ट देते थे। शंका है, उन्होंने अन्यायपूर्वक अवैध सम्पत्ति एकत्रित की है। अतः उन्हें इस पद से च्युत कर उचित दण्ड देने के लिये नगराध्यक्ष के पास भेज दिया है। अतः प्रजा से सानुरोध प्रार्थना है कि वे नया ग्रामाध्यक्ष नियुक्त करें। साथ ही यह भी घोषणा की जा रही है कि भविष्य में ग्रामाध्यक्ष के कार्य-निरीक्षण हेतु मन्त्री महोदय वर्ष में एक से अधिक बार आया करेंगे।"

ग्राम की समिति पुनः बुलाई गई। सभी एकत्रित हुए। वसुदान ने उच्च स्वर में कहा : "बन्धुओ! मैंने वज्रदत्त को भेज मुख्याध्यक्ष को इन्द्रोत पर सन्देह होने के विषय में कहलवा भेजा था। उन्होंने गुप्तचर भेज इस बात का पता लगाया और सन्देह दृढ़ होने पर उन्हें अपने अधिकार में ले लिया।.... अब मेरी यही सम्मति है कि महामति, सज्जन, ब्राह्मण, पूजनीय पुष्करजी को ही ग्रामाध्यक्ष बनाया जाए।"

पुष्कर ने तुरन्त उठकर कहा : "प्रिय ग्रामवासियो ! मैं अपने आपको इस पद के योग्य नहीं समझता तथा ब्राह्मण होने के कारण मुझे आपकी सेवा करने के लिये भी समय चाहिए। इन्द्रोत तो अपने किये का दण्ड पा ही लेंगे। उनकी सम्पत्ति भी राजकोष में जाएगी ही। अत: मेरा तो यही सुझाव है कि इन्द्रोत के सुपुत्र स्यूमरश्मि को ही ग्रामाध्यक्ष बना दिया जाए। वे युवक, सज्जन, धीर-गम्भीर हैं।"

सारी सभा से 'ठीक है ! ठीक है !' की ध्वनि आने लगी।

स्यूमरश्मि मुख नीचा किये बैठा था। वह अपने पिता के कार्य पर अत्यन्त लज्जित था। उसने तुरन्त उठकर कहा : "सज्जनो ! मुझे यह पद देने की बात कहकर मेरा उपहास न उड़ाएँ। मेरे पिता ने आप लोगों के साथ अन्याय किया है। अन्यायी के पुत्र के हाथ आप न्याय सौंप रहे हैं ! यह तो आश्चर्य की बात है ! मैं इस पद के योग्य नहीं हूँ। आप कृपा कर अन्य व्यक्ति ही चुनें।"

वसुदान बोले : "स्यूमरश्मि ! पुष्करजी ने उचित कहा है। आपने अपने पिता को ग्रामाध्यक्ष का कार्य करते देखा है। अत: आप यह पैतृक कार्य सुगमता से निभा सकते हैं। साथ ही आपको अवसर भी मिल रहा है कि आप अपने पिता के किये पापों का प्रायश्चित कर पितृ-ऋण से उऋण हो जाएँ।"

"आप कहते हैं, तो मैं प्रायश्चित करने का प्रयत्न करूँगा।"

उसने मुख नीचे किये ही कहा। पुष्कर ने उसे सांत्वना देने के लिये पुन: कहा :

"तात ! हमें आपके पिता से कोई व्यक्तिगत विरोध नहीं था। वे इसी ग्राम के होने के कारण पूजनीय थे। परन्तु अन्यायी को दण्डित करना धर्म है। हमने आपके पिता को नहीं अन्याय को दण्डित करवाया है। अत: आपको इस विषय में लज्जित होने की आवश्यकता नहीं।

वसुदान बोले : "ब्रह्मन् ! स्यूमरश्मि का लज्जित होना स्वाभाविक है। लज्जा धीर पुरुषों का आभूषण है। हमें स्यूमरश्मि से बहुत आशाएँ हैं।"

स्यूमरश्मि को नया ग्रामाध्यक्ष बना दिया गया। सभी ग्रामीण इस निर्णय से सन्तुष्ट थे।

# २

"भैया आ गये ! भैया आ गये ! माँ ! अरे कहाँ है माँ ! देखो भैया आ गये ।" केशिनी पूरी शक्ति से चिल्लाने लगी । मिश्रकेशी अन्दर कुम्भों में धान भर रही थी । उसके हाथ रुक गये ।··· भैया ! कौन आया होगा ? शलभ या शकुन्त । वह छाज वहीं छोड़ बाहर आई । अपने छोटे पुत्र शकुन्त को देख हैरान हो गई । "शकुन्त·· ! कब आए ?" "अभी-अभी माँ जी । "अठारह-उन्नीस वर्ष के नवयुवक ने झुककर माँ के चरणों का स्पर्श किया । लम्बा बलिष्ठ शरीर; उत्तरीय व अधोवस्त्र पहने हुए । बायें कन्धे पर यज्ञोपवीत । "बेटा ! आज असमय ही कैसे आया ? सकुशल तो है न ? शलभ कैसा है ?"

"ठीक हैं माँ ! मैंने भैया को बहुत कहा कि चलो । परन्तु वे न माने । कहने लगे— अभी मेरा ब्रह्मचर्याश्रम पूर्ण नहीं हुआ । वेदाध्ययन भी पूरा नहीं हुआ । आचार्य भी आज्ञा नहीं देंगे । वे ऋग्वेद का अध्ययन कर रहे हैं । शालियवन से प्रभास नामक अन्य युवक भी उनके साथ हैं ।"

"तो तुम कैसे आ गये ?" माँ ने साश्चर्य पूछा ।

"मैं ? मैं छोड़ आया वह आश्रम । माँ ! वेदाध्ययन में मेरा मन नहीं लगता । मैं नहीं स्मरण कर सकता यह सब ।"

"कैसी बातें करता है बेटा ! इसी अध्ययन से तो तू ब्राह्मण कहलाएगा । बीच में ही आश्रम कैसे छोड़ आया ? आचार्य क्या सोचते होंगे ! तुम्हारे पिताजी को कितना दुःख होगा ।"

"कुछ भी सोचें माँ ! मुझे नहीं बनना ब्राह्मण । मैं तो अब धनुर्वेद का अध्ययन करूँगा । शस्त्र उठाऊँगा, शास्त्र नहीं ।" वह भुजा उठाता हुआ बोला ।

केशिनी अवाक् खड़ी माँ-पुत्र का वार्तालाप सुन रही थी । उसने कहा :

"मां ! छोड़ो भी । भैया थके आए हैं। इन्हें दूध तो पिलाओ। मैं जो मधु लाई थी, वही इन्हें देना।....शर्करा भी तो है। भैया तो शर्करा बड़ी खाते थे।"

"अरे केशिनी ! तू अब बड़ी हो गई....बहुत बड़ी।" उसने केशिनी की वेणी पकड़ते हुए कहा।

पुष्कर दिन के समय घर में बहुत कम टिकते थे। प्रायः वे गांव में घूमते रहते या दूसरे गांवों की ओर हो जाते। दिन ढले वे पास के गांव से लौट रहे थे तो उनकी भेंट वसुदान के दूसरे पुत्र क्षत्रदेव से हो गई।

"भगवन् ! मैं क्षत्रदेव आप को प्रणाम करता हूँ।"

"कौन ! वसुदाननन्दन क्षत्रदेव ! कल्याण हो बेटा ! कहो, कैसे हो ?"

"कृपा है प्रभो ! मैं आपके घर से ही आ रहा हूँ। शकुन्त आ गया है।

"शकुन्त !....शकुन्त आ गया है ! कैसे आया ? शलभ तो ठीक है न ?" पुष्कर शीघ्रता से बोले !

"हाँ, वे तो प्रसन्न हैं, परन्तु शकुन्त आश्रम छोड़ आया है। कहता है, शास्त्र की जगह शस्त्र उठाएगा।"

"शस्त्र उठाएगा ! परन्तु क्यों ? क्या पृथ्वी क्षत्रिय-विहीन हो गई ? क्या इस ग्राम में तुम्हारे और वज्रदत्त जैसे क्षत्रिय नहीं ? क्या देश पर कोई संकट आया है, जो उसे शस्त्र उठाने की आवश्यकता अनुभव हो रही है।" पुष्कर एक ही सस में कह गये।

"भगवन् ! उसका मन वेदाध्ययन में नहीं लगता।"

पुष्कर को अपने पुत्रों से बड़ी आशा थी। वे अपने दोनों पुत्रों को दो वेदों में पारंगत करवाना चाहते थे। उनका मन खिन्न हो गया। चलते-चलते वे सोचने लगे— तो क्या शकुन्त ने जीवन के अठारह महत्वपूर्ण वर्ष व्यर्थ ही गवाँ दिये ? उसका शस्त्र के प्रति इतना लगाव क्यों...? पुष्कर स्मृतियों में खो गये—

जब वे शिक्षा पा लौटे थे, राह में ही उनकी भेंट मिश्रकेशी से हुई। सरोवर पर....वे उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो गये और मन ही मन उसे पाने

का संकल्प किया। उन्होंने घर पहुँच कर पिता से कहः

"मैंने कन्या देख रखी है।"

"कौन है ?"

"क्षत्रिय युवती।"

"क्षत्रिय कन्या !" पिता की भौंहों में बल पड़ गए थे। 'बेटा ! क्षत्रिय कन्या हम ब्राह्मणों में अपने को सुखी अनुभव नहीं कर सकती। वह पति-रूप में एक योद्धा को देखना चाहेगी। गौओं के स्थान पर घोड़े ढूँढेगी और हमारी मालाओं के स्थान पर आयुध। अच्छी तरह विचार लो।....यदि वह कन्या तुम्हारे लिये यह सब त्याग सकती है तो उचित है। फिर भी वह अपने जन्म-जात संस्कार नहीं भुला सकती। अपने वर्ग के गुण अपने अन्दर ही छिपा लाएगी। महान् ऋषियों ने क्षत्रिय बालाओं से विवाह किये हैं परन्तु....वे ऋषि तप के धनी थे और बालाएँ गुणी।" पुष्कर मिश्रकेशी के प्रेमपाश में बँध चुके थे। उन्होंने विचार कर मिश्रकेशी के पिता से कन्या के लिये याचना की थी। मिश्रकेशी की सम्मति होने पर वह उसे पत्नी-रूप में ले आए थे।

....तो क्या, वर्णसंकरता हो गई ?... तत्काल उन्हें स्वायम्भुव मनु का श्लोक याद हो आया— "जब तक बालक का संस्कार करके उसे वेद का स्वाध्याय न करवाया जाए, तब तक वह शूद्र के समान है। यदि वैदिक संस्कार करके, वेदाध्ययन करने पर भी शील-सदाचार आदि ब्राह्मण होने के गुण नहीं उभरे तो उसमें प्रबल वर्णसंकरता है; ऐसा विचारपूर्वक निश्चय किया गया है।"....तो शकुन्त में 'क्षत्रिय-भाव' प्रबल है। उसका ब्राह्मण बनना, ब्राह्मणोचित कर्म करना कठिन है।....प्रयत्न करेंगे।

विचारों में खोए उदास से वे घर पहुँचे। शकुन्त ने शर्माते हुए पिता को प्रणाम किया। पुष्कर ने थकी-सी आवाज में कहा: "आ गये बेटा !" "पिताजी ! मेरा मन वेदाध्ययन में नहीं लगा। मुझे क्षमा करें।" उसने दृष्टि झुकाये हुए कहा।

"आश्रम छोड़कर तुमने अच्छा नहीं किया बेटा ! तुम अपने मन-इन्द्रिय

पर विजय नहीं पा सके। अच्छा, में ही प्रातः सायं तुम्हें पढ़ाया करूँगा। वज्रदत्त,क्षत्रदेव आदि के साथ सम्भव है तुम न पढ़ सको। तुम्हारे लिये अतिरिक्त समय निकालने का प्रयत्न करूँगा। वेदों का ज्ञाता तो मैं हूँ नहीं। थोड़ा-बहुत नीति-शास्त्र तुम्हें पढ़ा दिया करूँगा।....मैं चाहता था, तुम एकवेदी होकर लौटो। तुम दोनों भाई एक-एक वेद के विद्वान बनो।" एकाएक पुष्कर चुप हो गये।

शकुन्त चुपचाप दृष्टि झुकाये पिता के थके, क्लांत चेहरे के भावों का अनुमान लगाता रहा।

●

सुरेणु के किनारे-किनारे अधेड़ उम्र का पुरुष तथा एक नवयुवती बढ़े आ रहे थे। पुरुष वेशभूषा से ब्राह्मण लगता था। एक बैल पर उन्होंने सामान लाद रखा था। साथ एक गौ थी।

पुरुष ने गहरा निःश्वास छोड़ते हुए कहा : "बेटी! हम कुरुजांगल देश की सीमा में पहुँच गये हैं। यह सुरेणु नाम की पवित्र नदी है। साक्षात् सरस्वती ही यहाँ सुरेणु होकर प्रकट हुई है। इसके पार कुरुदेश के सम्पन्न ग्राम-नगर हैं। यह वन भी कुरुक्षेत्र में ही पड़ता है। मेरे पिता भी यहीं-कहीं निवास करते थे। मैं शैशव में पिताजी के साथ एक-दो बार यहाँ आया था। बेटी! यहीं कुरुक्षेत्र में राजा कुरु ने यज्ञ किया था और सरस्वती का जल हेतु आह्वान किया था। यही सुरेणु की धारा वह सरस्वती है। परम प्रतापी राजा कुरु यहाँ प्रतिदिन स्वयं हल जोतते थे। इसी कारण इस क्षेत्र का नाम कुरुक्षेत्र पड़ा।"

नवयुवती चकित टटीहरी-सी गर्दन उठा इधर-उधर देखने लगी। उभरता हुआ यौवन, लम्बा-पतला लता-सा शरीर, फैली हुई विशाल आँखे, उज्ज्वल गौरवर्ण। सुरेणु के पार दूर-दूर तक फैले खेत और घने वृक्ष आबादी होने की सूचना दे रहे थे। साँझ घिरने लगी थी। वन की ओर गौओं के रम्भाने का स्वर, ग्वालों की आवाजें जीवन का सन्देश सुना रही थीं।

वे वृकस्थल के समीप पहुँच गये। पुरुष ने कहा : "पुत्री ! सामने कोई ग्राम दिखता है। क्यों न हम यहीं पूछताछ करें। आगे सुरेणु को पार जाते गौओं के खुरों के चिह्न हैं।....यही राह होगी ग्राम में प्रवेश के लिये।...लो, वन से गौएँ स्वत. ही चली आ रही हैं।...एक ग्वाला भी आ रहा है। इसी से पूछते हैं।"

वन की ओर से शकुन्त लकड़ियों का गट्ठर उठाये आ रहा था। सामने पुरुष और नवयुवती को खड़ा देख ठिठक गया। यह पुरुष वेशभूषा से तो ब्राह्मण ही प्रतीत होता है।....यह युवती ...अप्सरा—सी....नहीं तापस कन्या सी। कहाँ से आए होंगे यह लोग !

पुरुष ने समीप आकर कहा : "बन्धु ! मैं जाजलि नाम का ब्राह्मण हूँ। यह मेरी पुत्री रक्षिता है। हम त्रिगर्त्त देश से आ रहे हैं। हमारे पूर्वज यहीं कुरुक्षेत्र में रहते थे। अतः हम अपनी जन्मभूमि में पुनः लौट आए हैं। आज की रात कहीं आश्रय चाहते हैं।

शकुन्त ने कहा : "ब्रह्मन् ! मेरा नाम शकुन्त है। आपका स्वागत है। सामने वृकस्थल ग्राम में हमारा निवास-स्थान है। आप चलिये। मेरे पिता पुष्कर को आपसे मिलकर हर्ष होगा।" जाजलि ने बैल के गले की रस्सी पकड़ ली और शकुन्त के पीछे हो लिये।

शकुन्त ने लकड़ियों का गट्ठर आंगन में एक ओर फेंकते हुए केशिनी को आवाज दी : "केशिनी ! देख बाहर अतिथि आए हैं। इन्हें आसन आदि शीघ्रता से दो। मैं गौ-बैल बाँधता हूँ।" केशिनी झट से बाहर आई; अपरिचित पुरुष व नवयुवती को देख शर्मा गई और माँ को आवाज देती हुई अन्दर भाग गई। माँ ने बाहर आ आसन रख दिये। शकुन्त भी गौ-बैल बाँधकर आया। उसने कहा : "माँ ! ये त्रिगर्त्त देश से आए हैं।" "बैठिये, बैठिये ! हमारे वड़े भाग्य जो आप पधारे।" कह कर वह आतिथ्य का प्रबन्ध करने चली गई।

उसी समय पुष्कर भी आ गये। आते ही उन्होंने पूछा : "बेटा ! ये अतिथिदेव कहाँ से आए हैं ?" जाजलि ने उठ कर अभिवादन करते हुए

कहा : "बन्धुवर ! हम त्रिगर्त्त देश से आए हैं। हमारे पूर्वज यहीं कुरुवंश के राज्य में रहते थे। हमें पुनः अपनी जन्मभूमि खींच लाई है।"

'बैठिये, बैठिये ! आप उठने का कष्ट क्यों करते हैं भगवन् ! आपने बहुत अच्छा किया। कुरुजांगल देश महाराज कुरु के समय से लेकर समृद्ध रहा है। यह दिन-प्रतिदिन प्रगति के पथ पर बढ़ता जा रहा है। यहाँ आप को सुख-शान्ति व सुविधा मिलेगी।" उन्होंने रक्षिता की ओर देख कर कहा : "बेटी ! तुम केशिनी के साथ अन्दर विश्राम करो।" जाजलि ने कहा : "यह मेरी पुत्री है। इसकी माँ की मृत्यु हो चुकी है। बड़े यत्न से मैंने इस पाँच वर्ष की कन्या को पाला है।" "ओह !" पुष्कर ने दुःख प्रकट किया।

शकुन्त ने पात्र में जल लाकर जाजलि के हाथ-पैर धुलवाये और गोरस पीने को दिया।

स्वस्थ होकर जाजलि ने उच्छ्वास लेते हुए कहा : "बन्धुवर ! आज मैं सुख का अनुभव कर रहा हूँ। त्रिगर्त्त देश में तो अब एक पल भी सुख से नहीं बीतता। मत्स्य देश के शाल्ववंशीय राजा निरंतर आक्रमण करते रहते हैं। राजा विराट का सेनापति कीचक बड़ा बलि और निर्दयी है। वह नगर-ग्रामों को रौंदता हुआ चला आता है। महाराज सुशर्मा किसी भी तरह उसे हरा नहीं पाये और न ही सन्धि करते हैं। सारी प्रजा में इस समय अशान्ति है। वहाँ सदा संकटकाल रहता है। त्रिगर्त्त प्रदेश की सेना के पास ऐसा कोई नायक नहीं है। महाराज सुशर्मा तो आक्रमण होते ही गढ़ में बैठ जाते हैं। यह तो प्रजा ही है जो उसे भगाती है। मुझे अपनी कन्या के लिये यहाँ आना पड़ा। इसीलिये हम वह देश त्याग अपने पूर्वजों के देश में लौट आए।"

पुष्कर ने कहा : "आपने बड़ा अच्छा किया बन्धु ! जहाँ राजा असमर्थ हो, अपने शत्रु को न दबा सके और न ही युक्तियुक्त सन्धि कर सके, ऐसे नपुंसक राजा के राज्य में नहीं रहना चाहिये। हमारे देश में तो कभी आक्रमण हुआ हो, ऐसा पूर्वजों के मुख से भी हमने नहीं सुना। हमारे राजा सदा चक्रवर्ती रहे हैं। इस समय भी भीष्म पितामह विद्यमान हैं। सुयोधन,

65359

कर्ण, दु:शासन आदि महान् धनुर्धर हैं। उधर सुना है, पाण्डवों ने दिग्विजय की ठानी है। इन्द्रप्रस्थ को उन्होंने इन्द्रपुरी के समान बना लिया है। बन्धु ! हमें तो कभी भी युद्ध का अनुभव नहीं हुआ। आप बताएँ, युद्ध में क्या होता है ?"

"युद्ध ?....युद्ध क्षय रोग से भी भयंकर है। बहुत भयावह और दयनीय स्थिति होती है बन्धु ! आक्रमण होने की सम्भावना से ही सबके मन पर एक बोझ-सा छा जाता है। हृदय पर पड़ा पत्थर हटाए नहीं हटता। विशेष-कर जिनके स्वजन युद्ध के लिये आगे जाते हैं, वे शनैः शनैः सूखते रहते हैं। सारे देश में युवक नहीं दिखते। सभी को शस्त्र उठाना पड़ता है। देश भर में गुप्तचरों का जाल-सा बिछ जाता है। शिल्पी, थवई, शस्त्र-निर्माता सभी बुला लिये जाते हैं। प्रजा का धन ले लिया जाता है। करों की दर बढ़ा दी जाती है। हर ग्राम-नगर में प्रतिदिन अनेक अबलाओं का सुहाग उजड़ जाता है। किसी को पुत्र से वंचित होना पड़ता है, किसी को भाई से। बार-बार आक्रमण होता है अतः प्रजा से संकटकाल में लिया धन राजा लौटा नहीं पाता। त्रिगर्त्तराज सुशर्मा न तो पराक्रम दिखा शत्रुओं को बाहर ही निकाल पाता है और न ही सन्धि कर पाता है। जब दुर्दान्त कीचक सीमा पर सेना को तितर-बितर कर नगर-ग्रामों में घुस आता है, तो प्रजा को शस्त्र उठाना पड़ता है। सारी प्रजा अपनी धन-सम्पत्ति, अपनी बहु-बेटियों तथा समूचे राष्ट्र की रक्षा के लिये युद्धजीवी बन चुकी है। धन्य है वह प्रजा जो इतना सह रही है।"

"सत्य ही, बिना सुयोग्य राजा के राज्य कुछ नहीं। वीर पुरुष ही इस पृथ्वी को भोग सकते हैं।....अच्छा बन्धु ! आप यहाँ निवास कर सकते हैं। अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं। प्रातः ही मैं ग्रामाध्यक्ष के पास जाकर आपका नाम लिखवा दूँगा। वे आपको भूमि दे देंगे। पास ही कहीं आप निवास-स्थान बना सकते हैं। मेरा पुत्र शकुन्त इस कार्य में आपकी सहायता कर देगा।"

दूसरे दिन ग्रामाध्यक्ष स्यूमरश्मि ने उन्हें खेत के लिए भूमि दे दी तथा पुष्कर

ने निवास-स्थान के लिये। स्यूमरश्मि ने जाजलि का नाम-पता मुख्याध्यक्ष के पास भेज दिया।

शकुन्त, वज्रदत्त, क्षत्रदेव तथा अन्य ग्रामीणों ने मिलकर सुरेणु के किनारे जाजलि के घर का निर्माण-कार्य आरम्भ कर दिया। वन से लकड़ी, बाँस आदि लाकर आश्रम की तरह निवास-स्थान तैयार कर दिया। रक्षिता ने अन्दर मिट्टी-गोबर से अच्छी तरह लीप दिया। ग्राम के कुम्भकार, शिल्पी आदि ने उनके लिये आवश्यक सामग्री जुटा दी। पुष्कर ने अन्न की व्यवस्था कर दी।

"और किसी वस्तु की आवश्यकता पड़े तो निःसंकोच हमें कहना," शकुन्त ने जाती बार कहा। "आपने हमारे लिये इतना कुछ कर दिया, यह क्या कम है?" "यह तो हमारा कर्त्तव्य था। धर्म था। अब आप हमारे ही नहीं सारे ग्राम के, सम्पूर्ण देश के अतिथि हैं।"

रक्षिता ने दृष्टि उठा शकुन्त की ओर देखा। उसने उसके सम्बन्ध में सब कुछ केशिनी से सुन लिया था। उसने सोचा—लगता तो सज्जन ही है! फिर क्यों आश्रम त्याग आया होगा।

वह रक्षिता को अपनी ओर देखते जान झेंप गया। बोला: "अच्छा, चलता हूँ। आपके पिताजी भी अब आ ही जाएँगे।"

"ठहरिये! कुछ जल-पान कर लें। हमारा आतिथ्य स्वीकार करें।"

"एक अतिथि का आतिथ्य! क्षमा करिये।"

"अच्छा, आप एक बात बताएँ। आप असमय ही आश्रम क्यों छोड़ आए?"

वह खिसिया गया। समस्त ग्रामवासी उससे यही पूछ चुके थे। और वह अपने आपको इस प्रश्न के आघात से बड़ा व्यथित और हीन समझने लगा था।

"ऐसे ही····तथ्य यही है कि मेरा मन वेदाध्ययन में नहीं लगता। मेरी रुचि धनुर्वेद की ओर है।"

"धनुर्वेद की ओर!····यदि आप त्रिगर्त्त देश में होते तो आज तक सेना में होते। सेना में न भी होते तो भी शस्त्र-संचालन सीख चुके होते। वहाँ

कर्ण, दुःशासन आदि महान् धनुर्धर हैं। उधर सुना है, पाण्डवों ने दिग्विजय की ठानी है। इन्द्रप्रस्थ को उन्होंने इन्द्रपुरी के समान बना लिया है। बन्धु ! हमें तो कभी भी युद्ध का अनुभव नहीं हुआ। आप बताएँ, युद्ध में क्या होता है ?''

''युद्ध ?....युद्ध क्षय रोग से भी भयंकर है। बहुत भयावह और दयनीय स्थिति होती है बन्धु ! आक्रमण होने की सम्भावना से ही सबके मन पर एक बोझ-सा छा जाता है। हृदय पर पड़ा पत्थर हटाए नहीं हटता। विशेष-कर जिनके स्वजन युद्ध के लिये आगे जाते हैं, वे शनैः शनैः सूखते रहते हैं। सारे देश में युवक नहीं दिखते। सभी को शस्त्र उठाना पड़ता है। देश भर में गुप्तचरों का जाल-सा बिछ जाता है। शिल्पी, थवई, शस्त्र-निर्माता सभी बुला लिये जाते हैं। प्रजा का धन ले लिया जाता है। करों की दर बढ़ा दी जाती है। हर ग्राम-नगर में प्रतिदिन अनेक अबलाओं का सुहाग उजड़ जाता है। किसी को पुत्र से वंचित होना पड़ता है, किसी को भाई से। बार-बार आक्रमण होता है अतः प्रजा से संकटकाल में लिया धन राजा लौटा नहीं पाता। त्रिगर्त्तराज सुशर्मा न तो पराक्रम दिखा शत्रुओं को बाहर ही निकाल पाता है और न ही सन्धि कर पाता है। जब दुर्दान्त कीचक सीमा पर सेना को तितर-बितर कर नगर-ग्रामों में घुस आता है, तो प्रजा को शस्त्र उठाना पड़ता है। सारी प्रजा अपनी धन-सम्पत्ति, अपनी बहु-बेटियों तथा समूचे राष्ट्र की रक्षा के लिये युद्धजीवी बन चुकी है। धन्य है वह प्रजा जो इतना सह रही है।''

''सत्य ही, बिना सुयोग्य राजा के राज्य कुछ नहीं। वीर पुरुष ही इस पृथ्वी को भोग सकते हैं।....अच्छा बन्धु ! आप यहाँ निवास कर सकते हैं। अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं। प्रातः ही मैं ग्रामाध्यक्ष के पास जाकर आपका नाम लिखवा दूँगा। वे आपको भूमि दे देंगे। पास ही कहीं आप निवास-स्थान बना सकते हैं। मेरा पुत्र शकुन्त इस कार्य में आपकी सहायता कर देगा।''

दूसरे दिन ग्रामाध्यक्ष स्यूमरश्मि ने उन्हें खेत के लिए भूमि दे दी तथा पुष्कर

ने निवास-स्थान के लिये। स्यूमरश्मि ने जाजलि का नाम-पता मुख्याध्यक्ष के पास भेज दिया।

शकुन्त, वज्रदत्त, क्षत्रदेव तथा अन्य ग्रामीणों ने मिलकर सुरेणु के किनारे जाजलि के घर का निर्माण-कार्य आरम्भ कर दिया। वन से लकड़ी, बाँस आदि लाकर आश्रम की तरह निवास-स्थान तैयार कर दिया। रक्षिता ने अन्दर मिट्टी-गोबर से अच्छी तरह लीप दिया। ग्राम के कुम्भकार, शिल्पी आदि ने उनके लिये आवश्यक सामग्री जुटा दी। पुष्कर ने अन्न की व्यवस्था कर दी।

"और किसी वस्तु की आवश्यकता पड़े तो निःसंकोच हमें कहना," शकुन्त ने जाती बार कहा। "आपने हमारे लिये इतना कुछ कर दिया, यह क्या कम है?" "यह तो हमारा कर्त्तव्य था। धर्म था। अब आप हमारे ही नहीं सारे ग्राम के, सम्पूर्ण देश के अतिथि हैं।"

रक्षिता ने दृष्टि उठा शकुन्त की ओर देखा। उसने उसके सम्बन्ध में सब कुछ केशिनी से सुन लिया था। उसने सोचा—लगता तो सज्जन ही है! फिर क्यों आश्रम त्याग आया होगा।

वह रक्षिता को अपनी ओर देखते जान झेंप गया। बोला: "अच्छा, चलता हूँ। आपके पिताजी भी अब आ ही जाएँगे।"

"ठहरिये! कुछ जल-पान कर लें। हमारा आतिथ्य स्वीकार करें।"

"एक अतिथि का आतिथ्य! क्षमा करिये।"

"अच्छा, आप एक बात बताएँ। आप असमय ही आश्रम क्यों छोड़ आए?"

वह खिसिया गया। समस्त ग्रामवासी उससे यही पूछ चुके थे। और वह अपने आपको इस प्रश्न के आघात से बड़ा व्यथित और हीन समझने लगा था।

"ऐसे ही····तथ्य यही है कि मेरा मन वेदाध्ययन में नहीं लगता। मेरी रुचि धनुर्वेद की ओर है।"

"धनुर्वेद की ओर!····यदि आप त्रिगर्त्त देश में होते तो आज तक सेना में होते। सेना में न भी होते तो भी शस्त्र-संचालन सीख चुके होते। वहाँ

सभी धनुर्वेद के ज्ञाता हो चुके हैं। वहाँ की प्रजा वीर है, किन्तु राजा भीरु है और युद्धनीति नहीं जानता। वहाँ ग्रामीण एक हाथ से हल चलाते हैं, तो दूसरे से शक्ति।....यहाँ भी तो आप अभ्यास कर सकते हैं।"

"अब तो बहुत समय व्यर्थ गँवा चुका हूँ। अब शस्त्र-ज्ञान पाने की आशा नहीं है। अब तो इसी ग्राम-प्रान्तर में रह शेष जीवन गँवाना पड़ेगा।"

"आप इतना कुछ लोगों के लिये करते हैं। यह क्या कम महत्वपूर्ण है ?"

"आप तो यूँही प्रशंसा कर रही हैं।....अब चलता हूँ। गौओं के आने का समय हो गया है।"

रक्षिता शकुन्त की ओर अनायास ही आकर्षित हुई जा रही थी। शकुन्त की सदा खोजती-सी रहती आँखें उसे भलीं लगती थीं।

वह जाने लगा। रक्षिता ने पुनः कहा : "सुनिए ! आप संध्या के समय वन की ओर अवश्य जाते हैं। क्या बात है ?"

"संध्या के समय मुझे भला लगता है। कभी-कभी लकड़ियाँ ले आता हूँ। गौओं को ग्राम की ओर रम्भाती हुई आते देखता हूँ। पक्षियों के समूहों को चहचहाते हुए वन की ओर जाते देखता हूँ, और ...और डूबते सूर्य को देखता हूँ।"

"डूबते सूर्य को ! डूबते सूर्य को देखना तो बुरा बताया है।"

"परन्तु मुझे भला लगता है। बहुत भला ! किरणें कई रंग बिखेरती हैं और · और उनमें शक्ति नहीं रहती....डूबते सूर्य की ओर दृष्टि भर कर देखा जा सकता है।" कह कर वह वन की ओर हो लिया। वह उसे जाते देखती रही।

शकुन्त के जीवन में एक नवीन उल्लास छा गया था। वह रक्षिता की फैली हुई विशाल आँखों में कुछ अपनत्व देखता था। वही प्रथम प्राणी थी जो उसकी प्रशंसक थी। उसके सामने शकुन्त की हीन भावना लुप्त हो जाती थी और वह अपने को महान् समझता....बहुत महान् .. धीर-गम्भीर और गुणवान। वह अनुभव कर रहा था, उसे कुछ मिल गया है। उसके व्यक्तित्व की कमी पूरी हो गई है। उसके जीवन में नवीन, सुहावना वातावरण प्रवेश कर गया है। संसार में उसका भी अस्तित्व बन गया है। रक्षिता की विशाल

आँखों में वह अपना प्रतिबिम्ब देखता जो ग्राम के, आश्रम से भागे हुए शकुन्त से भिन्न था। जब रक्षिता उसे स्निग्ध दृष्टि से देखती तो सम्पूर्ण सृष्टि उसे गुनगुनाती-सी प्रतीत होती।

भुवन भास्कर भगवान् अंशुमाली अस्ताचल की ओर सरक रहे थे। दिन भर की उष्णता के बाद वातावरण शीतल उच्छ्वास लेने लगा था। रक्षिता व जाजलि बैल हाँक वन की ओर जा रहे थे। जाजलि ने कुल्हाड़ी उठा रखी थी, सम्भवत: लकड़ियाँ लाने के उद्देश्य से। रक्षिता बैल की देख-रेख करती रही और जाजलि सूखी लकड़ियाँ ढूँढते दूर निकल गये।

रक्षिता साल के एक वृक्ष के तने के सहारे खड़ी थी। बैल घास चर रहा था। वह कुछ गुनगुना रही थी। बैल के गले में बँधी घण्टी बार-बार बज कर उसकी गुनगुनाहट से तारतम्य स्थापित कर रही थी।

शकुन्त वन के गर्भ से सूखी लकड़ियाँ उठाए लौटा। रक्षिता को देख रुक गया। उसे स्मरण हो आया....कुछ समय पूर्व वह इसी तरह लकड़ियाँ उठाए आ रहा था, तो रक्षिता जाजलि के साथ आई थी। बैल भी साथ था। यह मास-ऋतु-अयन सहित तीन-चार वर्ष का समय कैसे बीत गया, उसे कुछ भी भान नहीं हुआ।

वह चुपचाप खड़ा रक्षिता के मधुर स्वर को सुनता रहा। लकड़ियाँ उसने धीमे से रख दीं। धीरे-धीरे उसके समीप जाकर पुकारा : "रक्षिता!" वह चौंक पड़ी, "मैं तो डर गई थी।" उसने सहमे स्वर में कहा। "इस देश में तुम्हें डरना नहीं चाहिए। विशेषकर जब मैं यहाँ वर्तमान हूँ।" उसने तनते हुए कहा।

"सुना है, आप राजधानी हस्तिनापुर जा रहे हैं।" रक्षिता ने उत्सुकता से पूछा। "हाँ ! पिताजी तो नहीं मानते परन्तु मैं जाऊँगा।....सुना है, इन्द्रप्रस्थ के राजप्रासाद की तरह हमारे महराज ने भी दिव्यसभा का निर्माण किया है। पाण्डव भी आ रहे हैं और राजसभा के शिल्प का निरीक्षण

करेंगे। और वे अपने सुयोधन आदि भाइयों से द्यूत क्रीड़ा करेंगे।"

"द्यूत क्रीड़ा ! यह तो बुरी बात है। सत्पुरुषों ने इस कर्म की सदा निन्दा की है।" "निन्दा तो की है। परन्तु वे खेलेंगे। कहते हैं, युवराज सुयोधन के मामा शकुनि इस खेल में बड़े प्रवीण हैं। उन्होंने ही इसका आयोजन किया है।"

"अच्छा छोड़ो ! लौटेंगे कब तक ?" "बस शीघ्र ही, समारोह समाप्ति पर।" "शीघ्र ही लौट आना। कहीं वहीं मत रुक जाना। सुना है, नगरों में बहुत से आकर्षण होते हैं। मद्यशालाएँ, रंगशालाएं और तरह-तरह के क्रीड़ाक्षेत्र। राजप्रासादों में तो कहते हैं सब ऋतुओं का अनुभव एक ही समय में हो सकता है।"

"मुझे उन आकर्षणों से क्या ! मैं तो दर्शक बनकर जाऊँगा और समारोह समाप्ति पर लौट आऊँगा।"

"और हाँ, कहीं किसी से भी दान मत लेना।"

"दान और मैं लूँगा। क्या तुम मुझे इतना नीच समझती हो ! मैंने आश्रम में पूरा समय नहीं बिताया है। फिर भी कुछ न कुछ तो पढ़ा ही है।" "मेरी बात आपको बुरी लगी, मैं क्षमा चाहती हूँ।"

शकुन्त को जल्दी ही क्रोध आ जाता था। सहज ढंग से कही बात भी उसे कभी-कभी कचोट जाती। वह जाने के लिये खड़ा होता हुआ बोला : "बुरी क्यों लगेगी। तुमने ठीक ही तो कहा है।....अच्छा मैं चलूँ।"

"तुम प्रतिदिन ये लकड़ियाँ उठाते हो। बैल क्यों नहीं ले आते ? भार ढोने का कर्म तो महाअधम बताया गया है।"

"मुझ में और इस बैल में कोई अन्तर नहीं। यही कहना चाहती हो न ?" उसने बैल की ओर संकेत करते हुए कहा।

"क्या कहते हो ! तुम हर बात का उल्टा अर्थ लेते हो।"

कुछ देर चुप रहकर वह बैल की ओर देखते हुए बोला :

"मैं चला जाऊँगा तो यही कार्य पिताजी को करना पड़ेगा। इसलिये मैं पर्याप्त लकड़ियाँ रख जाऊँगा। कर्म तो सभी तरह का करना पड़ता हैं।

बुद्धि से, जंघा से, पीठ से, साध्य की महत्ता के आगे उत्तम-अधम साधन महत्व नहीं रखता।"

"अच्छा छोड़ो भी। जाने से पहले मुझसे मिलकर जाना।"

"प्रयत्न करूँगा।" कह कर वह लकड़ियाँ उठा आगे बढ़ गया।

कुछ दूर जाने पर ही दूध के उफान की तरह रक्षिता के प्रति उसका अमर्ष बैठ गया। उसे अनुभव होने लगा था कि रक्षिता को देखे बिना वह शान्ति नहीं पा सकता।

आंगन में गट्ठर फेंक वह बरामदे में बैठ गया। पुत्र को आया जान मिश्रकेशी ने दूध गर्म करने के लिये केशिनी से पात्र मांगा। केशिनी ने पात्र देते हुए कहा: "रक्षिता भैया की बहुत बड़ाई करती है।" "क्या कहती है?" माँ ने उत्सुकता से पूछा। "कहती है, तुम्हारे भैया तो बड़े सज्जन हैं। सबका शुभ सोचते हैं। भला करते हैं। देखो, हमारी कितनी सहायता की! माँ! मैंने भी कह दिया कि घर में भी अब वे ही सारा काम करते हैं। पिताजी को कुछ भी करने नही देते।"

माँ ने कहा: "बेटी! है तो भला ही। पता नहीं इसे क्या हुआ जो आश्रम से भाग आया। ग्रामभर में केवल इसी बात के कारण उसका निम्नांकन होता है। पूरा अध्ययन कर लेता तो अच्छा ही था।"

मिश्रकेशी ने एकान्त पा पति से कहा: "देखती हूं, शकुन्त का रक्षिता के प्रति लगाव बढ़ता जा रहा है।"

"रक्षिता से!" पुष्कर चौंके। उनका चेहरा गम्भीर हो गया।

"शकुन्त मूर्ख है। जाजलि अपनी एकमात्र पुत्री धर्मभ्रष्ट को कभी नहीं देंगे।....वह कुछ कर न बैठे। स्वभाव से बड़ा हठी है। देखो न, हस्तिनापुर जाकर क्या करेगा। परन्तु मानता ही नहीं।"

"जाने दीजिए। घूम-फिर आएगा। हमारा क्या जाता है।"

दूसरी संध्या: शकुन्त प्रातः ही हस्तिनापुर जा रहा था। जाने से पहले वह रक्षिता से मिल लेना चाहता था। अतः सुरेणु की ओर हो लिया। रक्षिता भी बैल ले गई थी। जाजलि कुछ अस्वस्थ होने के कारण घर पर

ही रहे। वह इधर-उधर सूखी लकड़ियाँ बटोर रही थी। बार-बार वह सुरेगु की ओर देख लेती।

शकुन्त ने जाते ही बैल के गले की घण्टी जोर से बजाई। रक्षिता चौंक कर उधर देखने लगी। शकुन्त को देख उसकी विशाल आँखों में चमक आ गई।

"मुझे विश्वास था, तुम आओगे :....आज कुल्हाड़ी नहीं लाये। लकड़ियाँ नहीं काटोगे।"

"नहीं, आज विश्राम है। आज के डूबते सूर्य के दर्शन होंगे और.... ।"

"और क्या ?"

"और उभरते चाँद के।" शकुन्त अर्थपूर्ण दृष्टि से मुस्करा दिया।

"जा रहे हो ?"

"हूँ !"

"कब ?"

"प्रात: ही। सूर्य की किरणें राह में ही स्पर्श कर पायेंगी।"

"अच्छा लो !" रक्षिता ने धोती की छोर में बँधी पोटली निकालते हुए कहा : "मेरे पास कुछ सोना है। जानती हूँ यह एक भार[1] का सौवां भाग भी नहीं। फिर भी ले छोड़ो। समय पड़ने पर काम देगा।"

"नहीं, नहीं। यह क्या करती हो ! मैं तुम से धन नहीं लूँगा। नहीं, यह नहीं हो सकता। माँ ने मुझे पर्याप्त व्यय दिया है।"

"मेरी ओर से तुम्हे यह लेना होगा। नहीं तो मैं बोलूँगी नहीं।" रक्षिता ने आग्रह करके कहा। "नहीं मानती हो तो दे दो। किन्तु मैं इसे सुरक्षित लौटा लाऊँगा।" रक्षिता की आँखें छलछला आई थीं।

"रोती हो ! क्यों रोती हो ? मैं कोई युद्ध के लिये तो नहीं जा रहा। उत्सव के लिये जा रहा हूँ। शीघ्र ही आ जाऊँगा।"

रक्षिता का हृदय डूबता-सा जा रहा था। उसने रुँआसे स्वर में कहा : "मेरा मन स्थिर नहीं रह पा रहा। किसी अज्ञात शंका से सिहर जाता है।"

---

1. स्वर्ण का परिमाण (सम्भवत: एक खच्चर का बोझ)।

"तू तो पादल है। अच्छा चलता हूँ।....देखो दूर खेतों में सारस उड़ रहे हैं। वह देखो पक्षियों में श्रेष्ठ लाल चोचों वाले तोतों के समूह कितनी तीव्र गति से वन की ओर जा रहे हैं। गौओं के रम्भाने का स्वर समीप आ रहा है। भगवान् भास्कर भी छुप रहे हैं। .. अब चलता हूँ। चिन्ता न करना। शीघ्र ही आकर मैं तुम्हारे पिता से तुम्हारे लिये याचना करूँगा। तब....तब ये सारस हमारे खेतों में लौट आएँगे; तोतों के समूह वन की सघनता से इधर आ जाएँगे और गौएँ वन की ओर चली जाएँगी। भगवान् भास्कर अपनी तेजोमयी किरणों से नवीन प्रभात को जन्म देंगे।"

शकुन्त ने निमेष भर रक्षिता को देखा और शीघ्रता से मुड़ गया। वह वृक्ष के सहारे खड़ी हो उसे दूर होते निहारती रही। सर्र ... एक और पक्षियों का झुण्ड उसके सिर से होकर गुजर गया। गौओं के रम्भाने का स्वर समीप आने लगा।

शकुन्त के मन में उतना दु:ख न था। उसने सोचा, वह नया संसार देख लौटेगा। बताने के लिये उसके पास भी एक विषय बन जाएगा। ग्रामवालों को नगर के संस्मरण सुनाएगा और....रक्षिता को पा लेगा।

# ३

कुछ समय पश्चात् सम्पूर्ण कुरुक्षेत्र में यह समाचार फैल गया कि पाण्डव द्यूत क्रीड़ा में हार गये हैं और उन्हें बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास हो गया है।

जाजलि राजधानी के समाचारों में बड़ी रुचि रखते थे। उन्होंने पुष्कर से कहा : "तो कौरव-पाण्डवों में आपस की फूट बढ़ ही गई। आपस में फूट रखनेवाले तो कभी उन्नति नहीं कर सकते। न ही वे सुख की नींद सो सकते हैं।"

"मुझे तो लगता है बन्धु ! फूट इनमें शैशव से ही पड़ गई थी। कहना तो नहीं चाहिए, परन्तु ऐसा सुना जाता है कि वारणावत में पाण्डवों को जलाने का प्रयत्न हमारे राजा सुयोधन का ही था। पाण्डव तो वहाँ महाराज धृतराष्ट्र के प्रिय सखा और मन्त्री विदुर के स्नेह के कारण बच गये।" पुष्कर ने धीमे से कहा।

"मैंने तो अब यह भी सुना है कि पुरवासियों ने आकर पाण्डवों को वन जाने से रोकना चाहा और कौरवों की प्रकट में निन्दा की।"

"शकुन्त नहीं आया ! उससे सभी पता लगेगा।"

मैंने त्रिगर्त्तदेश में ही सुना था कि कौरव-पाण्डवों ने आचार्य द्रोण की अध्यक्षता में बड़े-बड़े शस्त्रास्त्रों का निर्माण कर लिया है। अर्जुन से आचार्य को विशेष स्नेह है और अर्जुन-कर्ण, भीम-सुयोधन की आपस में होड़ लगी रहती है। राजकुमारों की दीक्षा के उपरान्त हुआ शस्त्रास्त्र-कौशल प्रदर्शन तो आपने देखा होगा पुष्कर !"

"हाँ, देखा था ! उस समय केशिनी दो वर्ष की थी; शकुन्त-शलभ ने भी आश्रम में प्रवेश नहीं किया था। अहा ! क्या शोभा थी उस रंगमण्डप की !

राजपुरुष, ब्राह्मण, नगरवासी व साधारण प्रजा के लिये उचित स्थान बने थे। आचार्य द्रोण ने श्वेत वस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत व श्वेत पुष्पों की माला पहन रखी थी। राजकुमारों ने धनुष-बाण का कौशल, घुड़सवारी, मल्लयुद्ध का प्रदर्शन किया। भीम-सुयोधन ने गदायुद्ध और कर्ण-अर्जुन ने धनुर्विद्या में बड़ा कौशल दिखाया। अर्जुन-कर्ण में तो उसी समय विरोध हो गया था और वे युद्ध करने पर उतारू हो गये थे। सुयोधन और कर्ण की बड़ी मैत्री थी। सुयोधन ने उसका 'सूत-पुत्र' होने का कलंक मिटाने के लिये उसे उसी समय अंगदेश का राजा घोषित कर दिया था।''

"तो ये बीज आरम्भ से ही पड़ा है। दूसरे इतने शस्त्रास्त्रों का निर्माण भी तो प्रयोग के लिये ही हुआ है।''

''प्रयोग के लिये! जाजलि! आपका मन त्रिगर्त्तदेश के युद्ध के वातावरण से आतंकित है। अतः आप ऐसा ही सोचते हैं।'' पुष्कर ने उत्तेजित हो कहा।''

''मैं ठीक ही सोच रहा हूँ पुष्कर!''

''केशिनी! केशिनी! देख तो शलभ आ गया है।'' मिश्रकेशी आंगन से ही चिल्लाई।

"भैया! कहाँ है भैया?'' वह दौड़ी हुई आई और आंगन में शलभ से लिपट गई। फिर अकस्मात् एक अपरिचित को देख लजा गई।

''ये प्रभास हैं माँ जी! मेरे ही साथ इसने शिक्षा ग्रहण की है। शालियवन में इनका निवास-स्थान है।'' प्रभास, शलभ ने माँ को प्रणाम किया।

''कल्याण हो बेटा! बैठो, बैठो! खड़े क्यों हो? केशिनी! तू इस तरह क्यों खड़ी है? जा आतिथ्य का प्रबन्ध कर।''

शलभ और प्रभास आंगन में बैठ गये। केशिनी पानी लाई। शलभ ने प्रभास के हाथ-मुँह-पैर धुलाकर अपने धोये। उसी समय पुष्कर भी आ गये। अपने पुत्र को आया जान वे फूले न समाये। शलभ तथा प्रभास ने पुष्कर के

चरण छुए। पुष्कर ने पुत्र को हृदय से लगा लिया।

"बेटा! क्या-क्या शिक्षा प्राप्त कर आए हो?" पुष्कर ने पूछा।

"पिताजी! आपकी कृपा से मैंने ऋग्वेद का अध्ययन कर लिया है।"

"हाँ, ये तो अब एकवेदी ब्राह्मण हो गये।" प्रभास ने तुरन्त कहा।

"बहुत उत्तम! बहुत उत्तम! बेटा! मुझे यही आशा थी। तुमने अपने कुल का नाम उज्ज्वल कर दिया है।"

"पिताजी! शकुन्त नहीं दिखाई दिया। कहाँ है वह?"

पुष्कर का चेहरा एकाएक गम्भीर हो गया। "वह हस्तिनापुर गया है। बड़ा हठी है बेटा! अपना हठ पूरा करता है। कहता था, द्यूत क्रीड़ा देखने जाएगा। अभी लौटा नहीं।"

"द्यूत क्रीड़ा देखने! आश्चर्य है! यह कोई समारोह तो था नहीं।.... पिताजी! हमने पाण्डवों के दर्शन किए।"

"कहाँ?"

"हमने सुना कि वे गंगातट पर प्रमाण नामक विशाल वट-वृक्ष के समीप वनवास की प्रथम रात बिता रहे हैं। बहुत से अग्निहोत्री ब्राह्मण भी उनके साथ हैं। अतः प्रातः ही हम वहाँ पहुँच गये। हमने पाँचो पाण्डवों, उनके पुरोहित धौम्य के दर्शन किए। जब वे वन जाने लगे तो सभी ब्राह्मण भी उन्हीं के साथ चलने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर के बार-बार कहने पर भी वे प्रेमवश उन्हीं के साथ हो लिये।"

"बेटा! लगता, है इन राजकुमारों में उत्पन्न मतभेद ने द्वेष का रूप धारण कर लिया है।"

"यह द्वेष बढ़ता ही जा रहा है। बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की यन्त्रणा के बाद वे पुनः राज्य का भाग मांगेंगे। पुनः संघर्ष होगा। हमारे महाराज के मित्रगण भी उन्हें कुछ उचित परामर्श नहीं देते।"

"हूँ!" कहकर पुष्कर किसी गहन सोच में उतर गये।

जाजलि ने जब सुना कि शलभ आ गया है, तो वे भी दौड़ आए। उन्होंने दूर से ही हाँक लगाई: "पुष्कर! सुना है, तुम्हारा पुत्र आश्रम से लौट आया है।"

"आइये, आइये ! द्विजवर ! यही है शलभ और ये इसके सहपाठी।"

दोनों ने उठकर जाजलि का अभिवादन किया। जाजलि शलभ को देख मन ही मन प्रसन्न हुए—भरे-पूरे व्यक्तित्व का धीर-गम्भीर युवक; आँखों में विद्वता का तेज।

"वेटा ! ये त्रिगर्त्तदेश से यहाँ आ बसे हैं।" पुष्कर ने कहा।

"स्वागत है ! आपका स्वागत है ! कहिये आपको यहाँ कुछ कष्ट तो नहीं हुआ ?"

"भला पुष्कर के होते क्या कष्ट हो सकता है ! ·· कहो, क्या कुछ पढ़ आए।"

"जी, ऋग्वेद का अध्ययन किया है।"

"अति उत्तम ! अति उत्तम ! अन्य नीति-शास्त्र भी पढ़े होंगे।"

"जी कुछ-कुछ।"

"पुष्कर ! मैं तुम्हारे पुत्र की परीक्षा लेना चाहता हूँ। वेटा ! बताओ पण्डित कौन है ?"

"भगवन् ! जिसके सभी संशय मिट गए हों तथा जो दूसरों के संशय भी मिटा सके मैं तो उसी को पण्डित कहूँगा।"

"ठीक। अब बताओ ब्राह्मण कौन है ?"

"ब्रह्मन् ! जिसमें सत्य, दान, क्षमा, सुशीलता, क्रूरता का अभाव, दया—ये सद्गुण हों, वही ब्राह्मण है।"

जाजलि ने तुरन्त कहा : "ये सद्गुण तो अपने ग्राम के समंग शूद्र में भी हैं। तो क्या तुम उसे ब्राह्मण कहोगे ?"

"निःसन्देह ! निःसन्देह भगवन् ! मैं उसे ब्राह्मण कहूँगा। ब्राह्मण की परीक्षा तो उसके आचार से ही की जाती है।"

"और तुम्हारे भाई शकुन्त में ब्राह्मणोचित गुणों का अभाव दिखता है।"

"उसके ब्राह्मण हो सकने में मुझे भी सन्देह है। आश्रम में मैंने उसका व्यवहार देखा है। उसमें क्षत्रिय-भाव प्रबल है।"

पुष्कर यह सुन नखों से पृथ्वी कुरेदने लगे।

"धन्य हो ! धन्य हो बेटा ! सत्य ही तुमने ज्ञान पाया है। पुष्कर ! इसे कल मेरे पास भेजना। बेटा ! मेरा आतिथ्य स्वीकार करोगे न ?"

"यह मेरा सौभाग्य होगा प्रभो !" शलभ ने कृतज्ञता से कहा।

"आप भी दर्शन देंगे न ?" जाजलि ने प्रभास को पूछा।

"मुझे क्षमा करें भगवन् ! प्रातः ही मुझे शालियवन जाना होगा।"

दूसरे दिन प्रातः ही प्रभास शालियवन के लिये रवाना हो गया। पुष्कर ने उससे पुनः आने का वचन ले उसे विदा कर दिया।

शलभ प्रभास को विदा कर जाजलि के निवास-स्थान की ओर मुड़ गया।

जाजलि का निवास-स्थान आश्रम की तरह लगता था। आंगन के चारों ओर लताएँ-झुरमुट। हरे-हरे कदली, आम, बेर के पेड़। आंगन में तुलसी। एक ओर ओखली। लिपा-पुता स्वच्छ घर। शलभ को यह घर ग्राम के अन्य घरों से भिन्न और उत्तम लगा। एक ओर से धुआँ ऊपर उठ रहा था। कभी-कभी बरतनों के खनकने की आवाज आ रही थी। उसने प्रवेश द्वार पर खड़े हो पुकारा :

"क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?"

"आइये ! आइये ! स्वागत है।"

एक मधुर स्वर सुन वह चौंक गया।.... अच्छा, तो यह जाजलि की पुत्री होगी जिसके सम्बन्ध में केशिनी कह रही थी। उसने झिझकते हुए अन्दर प्रवेश किया।

"बैठिये; बैठिये ! मैं आपके लिये गोरस लाती हूँ। पिताजी पशुओं को जल पिलाने सुरेणु गए हैं। आते ही होंगे।" उसने कुशासन रखते हुए कहा शलभ ने देखा आसन की बुनाई भी वृकस्थल में प्रचलित बुनाई से भिन्न है।

"धन्यवाद ! आप भी बैठिये। गोरस तो मैं अभी पीकर आया हूँ जाजलि आ जाएँ तो बातें हों।"

"क्यों ! क्या मैं आपसे बातें नहीं कर सकती ?.... परन्तु आप तो विद्वान हैं, मैं अपढ़।"

"मैं तो यूँ ही कह रहा था। आप प्रसन्नता से कहिये।"

"सुना है, आप एकवेदी ब्राह्मण बनकर आए हैं।"

'जी, आप लोगों की कृपा से।"

"हमारी कृपा से !" वह चौंकी, "हमारी कृपा से क्यों ? हम तो तुच्छ हैं। उस परब्रह्म की कृपा से कहिये। आचार्य की, पुष्करजी की कृपा से कहिये।"

"जी, यह भी ठीक है।"

वार्तालाप में, तर्क करने में पटु शलभ इस तरुणी से बोलने में सकपका रहा था। वह सोचने लगा: जितना केशिनी ने बताया है, यह तो उससे भी बढ़कर है। सुन्दर, सुशील, सुलक्षणा; बातचीत से शिक्षित भी लगती है।

'स्वागत है ! स्वागत है ! आज तो हमारे भाग्य चमक उठे। कहिये, कब आए ?" जाजलि ने प्रवेश करते हुए कहा। शलभ जैसे चौंक पड़ा।

"जी, अभी-अभी।"

"बेटी ! शीघ्र खाने-पीने का प्रबन्ध करो।" 'बेटा ! आज रक्षिता ने खिचड़ी बनाई है। तुम भी चखना। इसने महाराज सुशर्मा की पाकशाला के अध्यक्ष की पत्नी से पाक-ज्ञान ग्रहण किया है। तुम भी तनिक परखो। कितना सीख पाई है !" शलभ केवल मुस्करा कर रह गया।

"बेटा ! सुना है, तुम्हारी माँ क्षत्रिय वंश से है।"

"जी, माँजी क्षत्रिय पुत्री हैं। वैसे ब्रह्मन् ! मनुष्य तो मनुष्य ही है। वह किसी भी वर्ण से विवाह कर सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य होना तो कर्म और आचार पर ही निर्भर है। मिट्टी के बरतन बनाने वाले को कहेंगे तो कुम्भकार ही, परन्तु उसका आचार पृथक् है। आचार से वह ब्राह्मण भी हो सकता है। इतना अवश्य कहा है कि बराबर वालों से विवाह, मित्रता, व्यवहार और बातचीत; यही नीति है।"

"ठीक, बहुत ठीक ! चलो भोजन कर लेते हैं।" जाजलि उठते हुए बोले।

भोजन के उपरान्त् तनिक विश्राम कर शलभ लौट आया। चौवीस वर्ष के कठिन ब्रह्मचर्य के पश्चात् उसने नारी का साक्षात्कार किया था। अभी

वह एक-दो वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता था। परन्तु रक्षिता से मिलने पर वह अपने मन में एक अनभोगी पुलकन का आभास पा रहा था। अपने मन पर विजय पाने का बहुत प्रयत्न करता, परन्तु व्यर्थ। सदा उसे रक्षिता का ही चिन्तन लगा रहता। प्रायः प्रत्येक सध्या वह सुरेणु के किनारे भ्रमण करने जाता। वहाँ उसे रक्षिता मिलती और वह उससे एक-दो बातें करता। □

साँझ शनै. शनैः उतर रही थी। शकुन्त के कदम शीघ्रता से अपने ग्राम की ओर बढ़ रहे थे। राजधानी के बड़े-बड़े नगर देख और राजपरिवार के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुन वह लौटा था। सोच रहा था: सारे ग्राम में वह अपने अनुभव सुनाएगा। वज्रदत्त, क्षत्रदेव आदि सभी पर अपनी धाक जमाएगा। ग्राम के बरगद के नीचे सभी किशोर उसके गिर्द एकत्रित हो जाएँगे। सभी ग्रामीण उससे मिलने आएँगे। उसका मूल्य भी बढ़ जाएगा। सबसे पहले… सबसे पहले वह रक्षिता को सुनाएगा। उसे आया जान वह कितनी प्रसन्न होगी!… क्यों न पहले वह रक्षिता से ही मिले। परन्तु वह मिलेगी कहाँ? सीधा उसके घर जाए तो सम्भव है जाजलि भी घर में हों और उसे अनुचित स्थिति का सामना करना पड़े। अचानक एक युक्ति उसे बादलों से छनती किरण-सी सूझी। वह वन से होकर जाएगा। सम्भव है रक्षिता आई हो। वह उसे उसी स्थान पर मिल सकती है, जहाँ वह उससे बिछुड़ा था। उसे लगा रक्षिता वैसे ही, वहीं की वहीं खड़ी है, उसकी प्रतीक्षा में। उसने पोटली टटोली। रक्षिता का दिया सोना सुरक्षित था।

वह गाँव की राह छोड़ सुरेणु पार कर वन की ओर हो लिया और ऊँचे स्थान पर खड़ा हो दूर तक दृष्टि दौड़ाने लगा। … ये कौन आ रही है? रक्षिता…! वही तो है। पशुओं को ला रही है। वह झट-से पेड़ की आड़ में हो गया।…अच्छा, मैं छिप जाता हूँ। इसे अचानक सामने हो चौका दूँगा।

वह मोटे तने की ओट में हो गया…अरे! यह पुरुष कौन आ रहा

है ? मुझे रक्षिता के पास जाने में विलम्ब करेगा।····आकृति तो पहचानी-सी है।····अरे ! भैया ? ये तो भैया हैं। उसका दिल उछल पड़ा।····पूरी शिक्षा प्राप्त कर आए होंगे। अब····? अब मुझे और लज्जित होना पड़ेगा। ····यह क्या ! भैया तो रक्षिता की ओर बढ़ रहे हैं।

उसने देखा शलभ रक्षिता की ओर बढ़ा। रक्षिता भी रुक गई। दोनों ने हँसते हुए कुछ बातें कीं और शलभ आगे बढ़ गया। रक्षिता सुरेणु पार कर गई।

शकुन्त का श्वास रुक गया। ललाट पर पसीने की बूदें चमक उठीं। जब शलभ निकल गया तो वह गहरा निःश्वास छोड़ता हुआ ओट से निकल आया।

····तो क्या रक्षिता बदल गई ? ····भैया का व्यक्तित्व निश्चय ही मुझसे आकर्षक है। ऊपर से ज्ञान का तेज। ·· नहीं ! रक्षिता ऐसी नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता।

वह खड़ा हो पश्चिम की ओर देखने लगा। काफी दिनों बाद उसने डूबते सूर्य को देखा। नगर की अट्टालिकाओं, ऊँची दीवारों, परकोटों के कारण सूर्य के आकाश में ही दर्शन हो पाते थे। सूर्य अभी सामने ही था। एक टक देखने से उसकी आँखों में पानी आ गया। उसने दृष्टि हटा ली। क्षण भर उसे सब पीला-पीला सा काला-काला सा धूप में जली आग के धुँए-सा दिखा। उसने धीरे से कदम बढ़ा दिए। अब उससे चला नहीं जा रहा था। उसे लगा वह दिन भर चलकर, थक कर धनुष की डोरी-सा टूट गया है।

घर पहुँचा। बहन दौड़कर गले मिली। थके से उसने माता-पिता के चरण छुए। और चुपचाप बैठ गया। पुष्कर कुछ नहीं बोले। माँ ने कहा : "बेटा ! बहुत समय लगा दिया। बहुत कुछ देख आया होगा। अभी तो थका होगा, क्या बताएगा।" "केशिनी ! इसके लिये जल गर्म कर।" "बेटा ! शलभ भी आ गया है।"

"हूँ ! मैंने उन्हें सुरेणु की ओर जाते देखा है।"

"हाँ बेटा ! वह प्रतिदिन भ्रमण करने इस ओर जाता है।"

शकुन्त का म था ठनका। एक बार फिर धमनियों के रक्त की गति बढ़ गई। लगा शिर-माथे की शिराएँ फट जाएँगी।

"वेटा ! तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं लगता। अन्दर आराम करो।" माँ ने कहा।

"थका होगा।" पुष्कर वोले।

वह अन्दर जाकर लेट गया।

शकुन्त अब कुछ उखड़ा-उखड़ा-सा रहने लगा। रक्षिता से मिलने का उसने प्रयत्न नहीं किया। एक बार केशिनी ने कहा भी : "भैया ! रक्षिता कह रही थी—शकुन्त को नगर में जाकर घमण्ड हो गया है। बात भी नहीं करते। ऐसा क्या देख आए हैं जो अब ग्राम में मन नहीं लगता।" वह मुस्करा कर रह गया।

और अगले दिन रक्षिता स्वयं ही उनके घर आई थी। शलभ खेत में गया था।

"क्या बात है ? इतने दिन आए हो गये। मिले भी नहीं।" रक्षिता ने दृष्टि झुकाये कहा।

"इतने दिन कहाँ ! दो-तीन दिन ही तो हुए हैं।" उसने बुझी हुई हँसी हँसते हुए कहा।

"लगता है, राजधानी में जाकर कुछ परिवर्तन हो गया है। ....मेरे लिये नगर से क्या लाए हो ?"

"ओह ! हाँ, तुम्हारा धन सुरक्षित है। अभी लाता हूँ।"

"कैसा धन ?" रक्षिता चौंकी।

"वही जो तुमने जाते वक्त दिया था।"

"तुम हर बात का उल्टा अर्थ लगाते हो। मैंने वह तो नहीं मांगा।"

वह झट से उठ गया। अन्दर से सोना लाकर रक्षिता को थमा दिया। उसी समय मिश्रकेशी आ गई। रक्षिता ने सोना छिपा लिया।

केशिनी विवाह योग्य हो गई थी। मिश्रकेशी इस विषय में चिन्तित रहने लगी। एक दिन उसने पुष्कर को इस बात का बोध कराया : "अब केशिनी के लिये योग्य वर ढूँढना चाहिए। आप कहीं देखिए।"

पुष्कर ने कुछ सोचते हुए शलभ को बुला कर कहा :

"बेटा शलभ। तुम्हारे साथ जो प्रभास आया था न ! वह मुझे सुयोग्य लगा। यदि उसके साथ केशिनी का विवाह हो जाए तो उत्तम हो। केशिनी अब विवाह योग्य हो गई है।"

'जी, पिताजी ! मेरा भी यही विचार था। तभी तो मैं उसे अपने साथ लाया था। उस दिन केशिनी भी उसे देखती ही रह गई थी; मैंने यह बात जान ली थी।"

"तो प्रातः ही जाकर तू उसे पूछ ले। आगे अच्छा मुहूर्त आ रहा है। शीघ्र ही विवाह-कार्य सम्पन्न कर देंगे।"

और शलभ ने जाकर बात पक्की कर ली थी। समयानुसार विवाह भी हो गया। केशिनी शालियवन चली गई। पुष्कर ने केशिनी का ब्राह्म-विवाह[1] किया।

शकुन्त को बहन से बड़ा स्नेह था। रक्षिता और केशिनी; ये दो ही तो उसका सम्मान करती थीं। विदाई के समय वह खूब रोया था। केशिनी उसके रक्षिता के साथ सम्बन्धों को ताड़ गई थी। उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा था : "भैया ! रक्षिता मेरी प्रिय सखी है। उसका ध्यान करना।"

---

१. वर के स्वभाव, आचरण, विद्या, कुल-मर्यादा तथा कार्यों की जाँच कर उसे केवल कन्या प्रदान करना (दहेज नहीं)।

# ४

शकुन्त ने पुनः सारा काम सम्भाल लिया। सब तरफ से मन को हटा वह काम पर केन्द्रित करने लगा।

सदा की तरह वह साँझ को कुल्हाड़ी उठा वन की ओर हो गया। वह विचारों में खोया-सा जा रहा था कि उसे रक्षिता आती दिखाई दी। वह दृष्टि बचा दूसरी राह हो जाना चाहता था कि रक्षिता ने जोर से कहा : "ठहरिये तो सही एक पल !" वह रुक गया। दृष्टि पृथ्वी पर जमाए खड़ा रहा। रक्षिता ने समीप आते ही कहा : "इतना परिवर्तन ! मैं तो स्वप्न में भी नहीं विचार सकती थी। कुछ बताओ तो सही इतना चुप-चुप क्यों रहते हो ?"

"रक्षिता ! समूचे ग्राम में परिवर्तन आ गया है। ये वन, सुरेणु का जल, ये ग्राम सभी तो बदल गये हैं। संध्या को लौटती गौओं का रम्भाना भी अब पहचाना-सा नहीं लगता।"

"लगता है, नगर के वातावरण ने तुम्हें मोह लिया है। कहीं कुछ नशा तो नहीं करने लगे जो इतनी उल्टी-सीधी बातें करने लगे हो। देखो, अब तुमने मिलना तो दूर रहा बात करना भी छोड़ दिया है।····केशिनी थी तो उससे बात कर लेती थी। अब वह भी गई। बड़ा अच्छा वर ढूँढा आपने उसके लिये।"

"मैंने ?····मुझे कौन पूछता है ! मैं तो अशिक्षित हूँ। गंवार हूँ। यह सब तो भैया ने, पिताजी ने ही किया।" उसका चेहरा विकृत हो गया।

"तुम अपने को इतना हीन क्यों समझते हो ? भैया ने, पिताजी ने जो भी किया उचित ही किया होगा।·· तुम मन ही मन इतना कुढ़ते क्यों हो ?" रक्षिता ने उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा।

"सम्पूर्ण ग्राम-प्रान्तर मुझे हीन समझता है। ....मैं कुढ़ूँगा क्यों रक्षिता! मैं क्यों कुढ़ूँगा! तुम क्या सोचती हो, मैं भैया से ईर्ष्या करता हूँ? कदापि नहीं।....ठीक है, वे विद्वान हैं। तुम भी उनकी प्रशंसक हो।....अच्छा जाओ, मुझे विलम्ब हो रहा है।" वह आगे बढ़ गया। उसके कन्धे से रक्षिता का हाथ शाख से गिरे फल की तरह लुढ़क गया। "तुम नहीं समझते।... मुझे नहीं समझ पाए ।" कहती हुई रक्षिता मुड़ गई।

कुछ-कुछ अन्धेरा हो गया था। वह बड़ी कठिनाई से लंगड़ाता हुआ चल रहा था। उसके पाँव में कुल्हाड़ी आ गई थी। कुछ घाव हो गया था।

उसने पूरी शक्ति लगाकर लकड़ियाँ आंगन में पटक दीं। "मुझसे नहीं होगा अब ये सब। नहीं होगा।"

"क्या हुआ बेटा?" माँ ने बाहर झाँक कर पूछा।

"माँ! मैं तंग आ गया इस श्रम से। देखो, पैर देखो।" उसने पैर दिखाते हुए कहा।

पुष्कर भी बाहर आए। उन्होंने शकुन्त की भाव-भंगिमा देख उत्तेजित हो कहा: "तो इतना क्रोध क्यों करता है अरे! दरिद्र होकर श्रम से घबराता है। दरिद्र को सुख की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए। नीति में तो कहा है; जो धनी होकर दान न दे, जो दरिद्र होकर कष्ट न सहे; इन दोनों के गले पत्थर बाँध कर पानी में डूबो देना चाहिए।"

"तो डुबो दीजिए मुझे पत्थर बाँध पानी में। मैं तैयार हूँ।" वह कुल्हाड़ी फेंकता हुआ बोला। शलभ भी बाहर आ गया। उसने धीमे से कहा: "शकुन्त क्रोध न करो। क्रोध करना अच्छा नहीं। कल से मैं लकड़ियाँ लाने जाया करूँगा। ....पैर में चोट लग गई तो क्या हुआ। शीघ्र उपचार हो जाएगा।"

"आपको तो भ्रमण करने जाना होता है न? आजकल तो पर्याप्त समय लगा आते हैं।"

"अच्छा भैया! कल से नहीं जाऊँगा। बस।"

वह पराजित हो गया था। उसे कुछ नहीं सूझा। खिन्न मन से चुपचाप

अन्दर आ गया। शलभ उसकी पीठ थपथपाता हुआ उसे अन्दर ले गया।

शलभ अपने भाई के स्वभाव से परिचित था। वह उसे क्रोध आने की स्थिति में नहीं पहुँचने देता। सदा नम्रता से काम लेता। सुबह ही वह वन से औषधि की जड़ें ढूँढ लाया और शकुन्त के पैर में लेप कर दिया।

□

भोजन के उपरान्त पुष्कर और शलभ विश्राम कर रहे थे। शकुन्त प्रायः उनके साथ नहीं बैठता था। इधर-उधर ही रहता। शलभ ने उसे बुला कर कहा : "शकुन्त! तुमने हस्तिनापुर का समाचार तो सुनाया ही नहीं। हमने भी पाण्डवों के दर्शन किए, गंगा के तट पर जब वे वन जा रहे थे।"

वह खुश हुआ। एक यही विषय था जिसे ग्राम में केवल वही जानता था। उसने गम्भीरता से कहना शुरू किया :

"समाचार क्या सुनाना, सुनाये योग्य नहीं है।··· पहले तो राजा सुयोधन दुष्टों की सम्मति से पृथ्वी का लोभ ही कर रहे थे और अब···अब उन्होंने भरी सभा में जुए में जीती द्रोपदी को बुलाया। कहते हैं, दुःशासन ने राजवधू द्रोपदी को भरी सभा में घसीटा और उसे नग्न करना चाहा। सुयोधन ने उसे अपनी जंघा पर विठाने का संकेत किया।····लगता है, यह कलह हमारे राजओं को ले डूबेगी। धृतराष्ट्र सत्य ही अन्धे हैं।"

"ऐसा मत कहो शकुन्त! अपने राजा के प्रति ऐसा नहीं कहते।" शलभ ने कहा।

"क्यों नहीं कहते? सम्पूर्ण पुरवासी यह कह रहे थे। यदि उस समय आप वहाँ होते, तो आप भी यही कहते। कपट द्यूत भी दो बार हुआ। पहले युधिष्ठिर अपने आप, भाइयों सहित द्रोपदी को हार गये। सम्पत्ति लुटने पर मनुष्य दाव पर लगे; यह प्रथम बार सुना। महाबलि भीम ने धृतराष्ट्र के सब पुत्रों को मारने की प्रतिज्ञा कर भय उत्पन्न कर दिया था। धृतराष्ट्र ने पुनः पाण्डवों की धन-सम्पत्ति, जीवन लौटा दिया। पाण्डवगण इन्द्रप्रस्थ लौट रहे थे। मैं भी

लौटने की तैयारी कर रहा था। परन्तु शकुनि ने सुयोधन को पुनः परामर्श कर महाराज द्वारा पाण्डवों को वापस बुलवा लिया और वनवास की शर्त पर दोबारा कपट द्यूत हुआ।"

कुछ क्षण सभी चुप रहे। फिर पुष्कर बोले : "हमारे राजा सुयोधन वास्तव में बुरे नहीं। उनमें असहिष्णु होने का दुर्गुण है और वे कभी-कभी दुष्टों की सहायता से भयंकर संकल्प कर बैठते हैं।"

उसी समय जाजलि आ गये। आते ही उन्होंने कहा : "कहो शलभ ! आजकल क्या अध्ययन कर रहे हो ? कुछ नवीन ?" "कुछ नवीन नहीं भगनन् ! वहीं पुरातन चल रहा है। परन्तु उस पुरातन में भी नवीनता है और नवीनता रहेगी। वैसे भगवन् ! आरम्भ में श्रीकृष्ण द्वैपायन की कुछ ऋषियों ने, विशेषकर बहुपाठी ब्राह्मणों ने आलोचना भी की। अब मैं स्वयं अनुभव करता हूँ, उन्होंने वेद का विस्तार कर महान् कर्म किया है। देखिए न ! मैं कितनी कठिनता से एक ऋग्वेद का ही अध्ययन कर पाया हूँ। ....इस युग में लोगों की ग्रहण शक्ति क्षीण हो गई, बुद्धि क्षीण हो गई, आयु क्षीण हो गई। इसका क्या कारण होगा द्विजवर !"

"कारण ! कारण स्पष्ट है बेटा ! संसार में लोगों की धर्म में प्रवृत्ति घट गई है। वे अर्थ और काम को अधिक महत्त्व देने लगे हैं। अतः वेद में कही गई सौ वर्ष की आयु कोई-कोई ही व्यतीत कर पाता है। मनुष्य की आयु घट गई है। बिषय-चिन्तन, काम-क्रोध-लोभ ही विवेकहीन मनुष्य को मृत्यु के निकट पहुँचाते हैं। अब तो विभिन्न आश्रमों के वर्षों में भी परिवर्तन करना चाहिये। ....अब लोगों की बुद्धि की दिशा बदल गई है। देखो, इतने महान् शस्त्रास्त्रों का निर्माण हुआ है जो सम्पूर्ण विश्व को....।"

"आप तो शस्त्रों की ही बात करते हैं जाजलि ! क्या शस्त्रास्त्र पहले नहीं होते थे ?" पुष्कर ने बीच में ही टोकते हुए कहा।

"होते थे। अवश्य होते थे। परन्तु इतने नहीं। सुना है, राजा सुयोधन ने शस्त्र-संग्रह की गति बढ़ा दी है। कल ही ग्रामाध्यक्ष कह रहा था : मुख्याध्यक्ष से शस्त्रों की मांग आई है। ग्राम के शस्त्र-निर्माता उमंग को

अध्यक्ष ने शस्त्र बनाने का आदेश दिया है।"...

"मैंने भी सुना है। साथ ही मैंने यह भी सुना है कि राजा सुयोधन वैष्णव यात्रा कर रहे हैं। महारथी कर्ण को दिग्विजय के लिए भेजने का उनका विचार है। इसी उद्देश्य से उन्होंने शस्त्रों की मांग की होगी।" पुष्कर ने सहज स्वर में कहा।

"कुछ ही दिन हुए, मैंने एक ब्राह्मण से सुना कि अर्जुन ने महादेव को युद्ध करके प्रसन्न कर लिया और दिव्यास्त्र प्राप्त किए। उन्होंने देवराज इन्द्र की सहायता की और उनसे भी दिव्यास्त्र प्राप्त किए।"...

"महामति जाजलि! आपको आयुधों के अतिरिक्त कोई और बात भी सूझती है? कोई और बात कीजिए।" पुष्कर ने पुनः उत्तेजित हो कहा।

"पुष्कर! मैंने युद्ध की विभीषिका देखी है। तभी कहता हूँ। त्रिगर्त-देश में मुझे अपना जीवन सुरक्षित नहीं लगा। तभी मैं अपने पूर्वजों की भूमि में आया हूँ। अपना तो कुछ नहीं, विशेष चिन्ता मुझे रक्षिता की थी।....अच्छा, आज मैं तुमसे महत्त्वपूर्ण बात करने आया हूँ।"

"कहिये, कहिये! शकुन्त! अरे शकुन्त कहाँ गया?"...

"वह तो कब का उठ गया है। वार्तालाप के समय वह नहीं बैठता है। विचित्र प्रकृति का प्राणी है।" शलभ ने कहा।

"अच्छा पुष्कर! उठो, मैंने नीचे की ओर जाना है। सुना है, तुम भी शालियवन जा रहे हो। चलो, राह में ही बात होगी।"

पुष्कर ने उत्तरीय सम्भाला और उठ खड़े हुए।"

शालियवन से लौट पुष्कर ने पत्नी से कहा: "पता है, जाजलि क्या कह रहा था!" 'क्या" "रक्षिता के सम्बन्ध में।" "रक्षिता के सम्बन्ध में।" पत्नी चौंकी।

"हाँ! शलभ उन्हें भा गया है।" "शलभ? ....परन्तु....।"

"परन्तु क्या? ... कन्या सुशील है, सुलक्षणा है, सुशिक्षित है।" पुष्कर प्रसन्नता से बोले; "किन्तु....आप को कुछ ज्ञान नहीं क्या?" "मैं समझ रहा हूँ। परन्तु जाजलि शकुन्त के अपढ़ अस्तित्व को महत्त्व नहीं देते।"

मिश्रकेशी गहन चिन्ता में डूब गई। कुछ समय पश्चात् उसने कहा : "अभी आप इस विषय को कुछ समय के लिये अलग रखें तो उचित है।" उसकी आँखों में याचना थी।

"कुछ समय के लिये...ठीक है, मानता हूँ। सम्भव है समय कुछ समाधान निकाल दे।"

धान की फसल तैयार हो गई। जाजलि ने भी पर्याप्त भूमि बो दी थी। जब काम अधिक पड़ जाता तो वे अन्य व्यक्तियों से सहायता ले लेते। इसी उद्देश्य से शकुन्त को बुलाने वे पुष्कर के निवास-स्थान की ओर चल दिये।

"सुना है, द्वैतवन में कोई ऋषि ठहरे हैं। कहाँ से आये होंगे भला! आपने भी देखा उन्हें?" जाजलि ने पुष्कर को पूछा।

"क्या पता लगता है कहाँ से आए! ऋषि, नदी, महात्माओं के कुल और स्त्रियों के दुश्चरित्र का मूल नहीं जाना जा सकता। मैंने तो उन्हें नहीं देखा। शकुन्त का वहाँ आना-जाना है। वह प्रातः संध्या जाता रहता है।" पुष्कर बोले।

"अच्छा ही है यदि कुछ ज्ञान प्राप्त कर ले। अच्छा, कल शकुन्त को मेरे पास भेजना। थोड़ा काम पड़ गया है।"

"ठीक है। भेजूँगा।" पुष्कर ने विश्वास दिलाया।

संध्या में शकुन्त वन से लौट आया। आते ही कुल्हाड़ी कोने में रखता हुआ बोला : "अब तो मैं ब्रह्मज्ञान की दीक्षा लूँगा। संन्यासीजी ब्रह्मज्ञान के ज्ञाता हैं। उनका शिष्य मरुत मेरा मित्र बन गया है।"

"ब्रह्मज्ञान?" ब्रह्मज्ञान तो बहुत दूर की स्थिति है बेटा! ब्रह्मज्ञानी बनने के लिए तो समस्त सांसारिक बन्धन तोड़ने पड़ते हैं।" पुष्कर ने हैरान हो कहा।

"ब्रह्मज्ञान तो ज्ञान की अन्तिम स्थिति है शकुन्त! ब्रह्मज्ञानी तो कोई बिरला ही हो पाता है। सर्वस्व त्याग, योग द्वारा मनुष्य ब्रह्मस्वरूप हो पाता है। स्वयं भगवान् व्यास भी ब्रह्मतत्त्व को जानते हुए ब्रह्मस्वरूप

नहीं हो सके । सुना है, उनके सुपुत्र शुकदेव शैशव से ही सांसारिक मोह से विरत हो ब्रह्मज्ञानी हो गये हैं। एक सनातन ऋषि सनत्सुजात भी ब्रह्म-स्वरूप हुए सुने जाते हैं।'' शलभ ने उसे समझाते हुए कहा।

''बेटा ! कल तुम्हें जाजलि ने बुलाया है। कुछ काम करना होगा।'' पुष्कर ने कहा।

शकुन्त ब्रह्मज्ञान से एकदम सांसारिक झंझटों में आ गिरा। उसने शीघ्रता से कहा : ''नहीं पिताजी ! मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। मुझे अपना काम है। इतना समय उन्हें यहाँ रहते हो गया क्या अभी वे आत्मनिर्भर नहीं हो पाए ?''

''बेटा ! अकेले व्यक्ति हैं। क्या-क्या करें ! तुम्हें उनकी सहायता करनी चाहिए।''

''हाँ शकुन्त ! तुम्हें जाना चाहिए।'' शलभ ने कहा।

''भैया ! आप हीं क्यों नहीं चले जाते। परन्तु आप तो शिक्षित हैं। जंघा, पीठ से होने वाला अधम कर्म क्यों करेंगे !''

''नहीं भाई ! ऐसी बात नहीं है। कर्म सभी तरह का करना चाहिए। यदि तुम नहीं जाओगे तो मैं जाऊँगा ही।''

शकुन्त पुनः पराजित हो गया था। भाई के धैर्य पर उसे आश्चर्य था। उसने शलभ को कभी क्रोध करते नहीं देखा था।

वह अब रक्षिता के सामने नहीं पड़ना चाहता था। फिर भी अभी तक उसके हृदय की गहराई में रक्षिता गुनगुनाती थी। एक दबी-सी आवाज थी जिसने उसे जाजलि के घर जाने पर विवश किया। किन्हीं पर्वत-कन्दराओं में भास्कर के तेज से बची हिमशिला-सी रक्षिता के प्रणय की ठण्डक अब भी उसके अन्तःस्थल में फैली थी।

दिनभर उसने जाजलि के खेतों में काम किया। फसल काटी और इकट्ठी की। संध्या को वह लौटने लगा। जाजलि के अनुरोध पर वह उनके घर गया।

''बेटा ! तुम्हें यहाँ बुलाने का एक और प्रयोजन भी था।'' जाजलि

ने बैठते हुए कहा। वे क्षण भर चुप रहे, फिर बोले : "बेटा ! मैंने तुम्हारे पिताजी से बात की है····शलभ के सम्बन्ध में। रक्षिता अब विवाह योग्य हो गई है।"

शकुन्त के हृदय की गहराई में मन्द-सी गुमगुनाहट एकाएक बन्द हो गई। ····भास्कर की उष्ण, तेज किरणें पर्वत को बींध हिमशिला को पिघलाने में समर्थ हो गई थीं।

बहुत दिनों से जिसे वह अनेक आवरणों से ढाँपता आया था, वह एकदम नंगा हो गया था। वह थका तो था ही। अपना शरीर उसे टूटता-सा लगा।

"भैया के सम्बन्ध में····मैं समझा नहीं।" कठिनता से उसने कहा।

"यही रक्षिता और शलभ का सम्बन्ध जोड़ने के लिए।" जाजलि ने हौले से कहा।

"रक्षिता····शलभ····", वह बुदबुदाया। फिर कृत्रिम मुस्कान के साथ बोला : "हाँ, हाँ। अति उत्तम ! अति उत्तम !"

जब भी वह किसी अनचाही स्थिति में या आवेश में आता तो उसे लगता उसके शिर की शिराएँ फट जायेंगी। उसे अपना मन डूबता-सा प्रतीत हुआ और वह वहाँ से उठ आया।

अब ··? वह हर स्थल पर पराजित हुआ था। अपमान, पराजय, वितृष्णा, क्रोध, हीन-भावना से उसका मन भर गया। वह सीधा घर न जाकर वन की ओर हो लिया।

बाँसों के झुरमुट में लता, गुल्म से घिरा संन्यासी विभु का आश्रम। विभु आश्रम के बाहर टहल रहे थे। किसी की आहट सुन वे चौंके। उन्होंने मुड़कर देखा···· शकुन्त उखड़ा-उखड़ा-सा, विचारों में खोया आ रहा था। आते ही उसने संन्यासी के पाँव पकड़ लिये।

संन्यासी एक शिलाखण्ड पर विराज गये।

"क्या बात है वत्स ! आज कुछ खिन्न से प्रतीत होते हो ?" विभु ने स्नेह से पूछा।

"भगवन् ! मैं सांसारिक आडम्बर से उकता गया हूँ। मुझे भी अपना शिष्य बना लें।"

"शिष्य ! क्यों ?" विभु चौंके। "लगता है, तुम्हें जीवन की कटुता का अनुभव हुआ है, किन्तु वत्स ! यह कटुता-मिठास, सुख-दुःख ही जीवन है। पाप-पुण्य, सुख-दुःख आदि सभी दो प्रकार के फल हैं और दोनों का ही उपभोग करना पड़ता है।···इस सामने के वृक्ष को देखते हो न ? कुछ ही समय में इसके पत्ते झड़ जाएँगे और यह रुण्ड-मुण्ड हो जायेगा। किन्तु कुछ ही समय पश्चात् इसमें पुनः अंकुर फूटेंगे, पत्ते आएँगे, फूल-फल लगेंगे, पक्षी चह-चहाएँगे, भौंरे गुन्जार करेंगे। अनेक आँधियों को सहता हुआ यह जीवन से संघर्ष कर रहा है। और तब तक करता रहेगा जब तक आँधी का प्रचण्ड आघात इसे समूल उखाड़ न देगा।"

"मुझे भी आँधी ने उखाड़ फेंका है भगवन् !" शकुन्त गिड़गिड़ाते हुए बोला।

"नहीं, कदापि नहीं ! तुम्हें उखाड़ा नहीं है। मात्र हिलाया है ताकि तुम और भी दृढ़ हो जाओ।"

"आप मुझे उलझा रहे हैं आचार्य ! स्मरण करिये। एक दिन आपने मुझे दीक्षित करने का वचन दिया था।"

"मैं वचन पर अटल हूँ वत्स ! परन्तु तुम अपने मन में झाँको। क्या तुम सांसारिक मोह त्याग सकते हो ? ब्रह्मस्वरूप होने के लिये, मृत्यु पर विजय पाने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है। क्या तुम भूखे रह सकते हो ? कष्ट सह सकते हो ? माता-पिता, भाई-बहन, यह ग्राम, यह देश और सकल संसार त्याग सकते हो ?"

"मैं त्याग सकता हूँ आचार्य ! आप केवल आज्ञा दीजिए।"

"यह तुम्हारा भ्रम है," आचार्य विभु उठ खड़े हुए, "तुम नहीं त्याग सकोगे। तुम मुझे पथ-भ्रष्ट हुए लगते हो। तुम अब न ब्रह्मज्ञान पा सकते हो और न सांसारिक बुद्धि; न ब्राह्मण-धर्म निभा सकते हो, न क्षात्र-धर्म।····फिर भी निराश मत होओ। मैं तुम्हें जानने का प्रयत्न करूँगा

जिससे युक्ति ढूँढ तुम्हें बताऊँ। और तुम कोई पार पा सको।"
शकुन्त सिर झुकाये बैठा रहा। विभु उसके समीप आए और उसकी
पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले : 'वत्स ! निराश मत होओ ! तुम स्वयं
अपने को खोजो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। जानता हूँ, तुम में शक्ति
है। यह उचित दिशा और समय मिलने पर निखरेगी।"
शकुन्त उदास मन लिए लौट आया।
वह अब बहुत कम बोलता। सदा कुछ सोचता ही रहता। घर में भी
कम ही ठहरता। अधिकतर विभु संन्यासी के पास ही रहता या उसके
शिष्य मरुत के साथ। परिवार के सभी सदस्य और समूचा ग्राम उसके लिये
चिन्तित था।
उसकी व्यथा समझने वाला ग्राम में कोई न था। केवल दो विशाल
आँखें इस तथ्य को समझतीं और निश-दिन जल के सरोवर में गोते
लगातीं।
"पता नहीं इसे क्या हो गया है ? जब देखो कुछ सोचता ही रहता है।
यह चिन्तन इसके मन-शरीर पर भी प्रभाव डाल सकता है।" शलभ कहता।
"सब उस संन्यासी का प्रभाव है।" पुष्कर कहते।
"हाँ, देखो अब तो अपने शरीर की भी परवाह नहीं करता। बाल
बिखरे हुए। दाढ़ी मूँज की तरह उग आई है।" माँ कहती।
संन्यासी विभु भी शकुन्त के विषय में चिन्तित हो गये। वे उससे बचने के
लिए आश्रम से बाहर ही रहने लगे। शिष्य मरुत आश्रम की झाड़-बुहार करता
रहता। एक बार मरुत ने कहा : 'शकुन्त ! हम वनवासी लोगों का कोई
ठिकाना नहीं होता। सम्भव है हम कहीं और जगह निकल जायें, तो तुम
चिन्ता न करना।"
शकुन्त ने सोचा, यदि ये चले गये तो उसका क्या होगा ?
बहुत सोचकर एक दिन अचानक वह गृहस्थ छोड़ वन जाने को उद्यत
हो गया।
ग्राम भर में यह बात फैल गई। रक्षिता सुनकर घबरा गई। मन ही

मन उसने निश्चय किया कि यदि शकुन्त चला ही गया तो वह भी पीछे-पीछे चली जाएगी।

सभी ने उसे समझाया-बुझाया। किन्तु कोई प्रभाव नहीं। ग्रामाध्यक्ष, दसुदान आदि सभी इकट्ठे हुए। पुष्कर चुपचाप बैठे थे। शलभ भी मौन था।

वह सबके चरण छूने लगा। मिश्रकेशी के चरण छुए तो माँ का हृदय तड़फ उठा। उसने उसे झंझोड़ कर कहा : "यह क्या पिशाच सवार हो गया है तुझ पर ! अभी तेरा ब्रह्मचर्य का समय भी पूरा नहीं हुआ और तू वन जा रहा है ? ऐसी बात थी तो आश्रम से क्यों लौटा ?....क्या अपनी माँ की मोह-माया भी तुझे नहीं रही ?"

वह दृष्टि झुकाये खड़ा रहा। सभी की नजरें उस पर जमीं थीं। वह धरती में गड़ा-सा जा रहा था। स्थिति का उसे भान हो गया था। उसके समक्ष अब दो ही रास्ते थे—या सब बन्धन तोड़ भाग जाए....या घर में घुस जाए।

माँ की ममता, आंगन की मिट्टी ने उसके पैर पकड़ लिए। धीमी गति से मुख नीचे किये ही वह अन्दर घुस गया।

एक और पराजय। सारे ग्राम के सामने।

रात भर और पूरा दिन वह अन्दर ही अन्दर रहा। साँझ के समय, बिना किसी से कुछ कहे वन की ओर जो गया तो लौटा नहीं।

पुष्कर, जाजलि, शलभ, वज्रदत्त, क्षत्रदेव ने सुबह ही बहुत ढूँढा, परन्तु कुछ पता नहीं।

संन्यासी विभु, शिष्य मरुत सहित अदृश्य हो गये थे।

# ५

रक्षिता मन ही मन घुलने लगी। उसकी स्थिति असहाय लता-सी हो ई थी जिसके समीप का वृक्ष आँधी ने समूल नष्ट कर दिया हो और वह पने में ही उलझ कर रह गई हो। उसका मुख कुम्हला गया। शरीर ख़ने लगा।

दो तीन दिनों पश्चात् ग्रामवासियों को यह घटना पुरानी लगने लगी। किसी ने पुष्कर से कहा : "देखना अब वह तत्त्वज्ञानी होकर लौटेगा।" कोई कहता "पुष्करजी ! आपके कुल का नाम उज्ज्वल करेगा।"

धीरे-धीरे सभी संयत हो गये, किन्तु रक्षिता मरुभूमि की कली-सी सूख गई।

शलभ ने संध्या को सुरेणु तट पर जाना कम कर दिया था। अब ह पुन: जाने लगा। काफी देर तक वह टहलता रहता, परन्तु उसे रक्षिता दिखाई नहीं देती।

जाजलि ने शलभ के सम्बन्ध में पुष्कर से पुन: बात चला दी।

एक साँझ जब शलभ भ्रमण के उपरान्त लौट रहा था, उसे वन की ओर से निकलती रक्षिता दिखाई दी। उसने अनुभव किया वह पीली पड़ गई है। चेहरे की लालिमा लुप्त हो चुकी है। उसका रंग वृक्षों के पीले-सूखे पत्तों से भिन्न न था। शलभ को देख वह रुक गई। उसे लगा वह फूल-पत्तों से रहित सूखी तुलसी-सी हो गई है। झाड़ियों में लिपटी सूखी बेला-सी चरमरा गई है।.........कुछ अस्वस्थ लगती है, इसे कोई रोग हुआ हो, ऐसा तो जाजलि से सुना नहीं।

"कैसी हो रक्षिता ! क्या अस्वस्थ थीं जो इतनी दुबली हो गई हो ?"

"नहीं तो ! अच्छी तो हूँ।" उसने मन्द-सा मुस्करा कर कहा।

"अच्छी तो हो । परन्तु ......" वह रक्षिता के समीप आ गया ।

"सुनिए, मैं आपको एक रहस्य बताना चाहती हूँ...... !" रक्षिता ने साहस बटोर कहा । शलभ को कुछ खुटका हुआ ।

"शकुन्त का कुछ पता लगा ?" उसने धीमे से पूछा ।

"नहीं, कुछ पता नहीं । वह कुछ उन्मादी हो गया है । देखता हूँ, मेरे आने पर उसमें अनेक परिवर्तन आए हैं । उसकी बुद्धि अस्थिर है । वह मन पर नियन्त्रण नहीं रख सकता । जैसे वह कुछ पाना चाहता हो, जो उसे नहीं मिलता ।.... अच्छा, क्या रहस्य बताना चाहती हो ?"

"शकुन्त का कुछ पता नहीं ।......मैंने भी द्वैतवन बहुत आगे तक देखा ।........कुछ पता नहीं........" वह वन की ओर देखती बुदबुदाई ।

"हमने भी तो ढूँढा । सारा वन छान मारा ।"

"क्या वह नहीं लौटेगा ?........नहीं, अवश्य लौटेगा ।........अवश्य । सुनिए ! मुझे शकुन्त से....शकुन्त से मैं शकुन्त से प्रेम करती हूँ । मैंने उन्हें मन ही मन वरण किया है ।" इतना कह कर वह शीघ्रता से चली गई ।

वन की ओर से आती शीत लहर शलभ के अन्तर को छू गई । वृक्षों से सूखे पत्ते झरने लगे । झाड़ियों से गिरे सूखे तृण हवा से गोलाकार घूमते हुए उसके सामने आकाश की ओर उड़ गये ।

वह वहीं प्रस्तर प्रतिमा की तरह ठण्डा पड़ गया । उसे लगा, सुरेणु ऊपर की ओर बह रही है । वन के वृक्ष उल्टे हो गये हैं । सूर्य की किरणें पीली पड़ गई हैं ।

घर आकर उसने एकान्त में माँ से पूछा: "माँ ! शकुन्त के रक्षिता से कुछ सम्बन्ध थे ?" माँ ने आश्चर्य से पुत्र के भावों को पढ़ने का प्रयत्न किया ।

"हाँ बेटा ! मैंने भी अनुमान लगाया था ।" केशिनी ने भी ससुराल जाने से पहले मुझे बताया था ।"

"माँ, तुम्हें यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए थी ।"

माँ चुप रही । शलभ विचारमग्न हो गया ।

जाजलि रक्षिता के विवाह के सम्बन्ध में पुष्कर को दबाव डालने लगे ।

पुष्कर ने भी पत्नी से इस बात का पुनः उल्लेख किया। पत्नी ने आशंकित हो
कहा : "शलभ को पता लग गया है ।"

"क्या पता लगा ?" पुष्कर ने पूछा।

"यही कि·······कि शकुन्त से रक्षिता के पूर्व सम्बन्ध थे।"

"शलभ को कैसे पता लगा ?" "कुछ कह नहीं सकती । सम्भव है·······
सम्भव है, रक्षिता ने स्वयं बताया हो। रक्षिता से उसका सम्बन्ध करना अब
उचित नहीं।········ आप शलभ के लिये कोई और कन्या क्यों नहीं ढूँढते ?
यदि शकुन्त लौट आए तो·······!"

"यदि शकुन्त लौट आए तो·······!·······यदि शकुन्त लौट आए तो !"
पुष्कर ने दोहराया।

कुछ विचार कर उन्होंने शलभ को आवाज दी।

"बेटा ! तुम्हारे विवाह का समय बीत रहा है। मैंने निश्चय किया है
कि तुम्हारा विवाह करा दिया जाए। इस समय मेरी दृष्टि में दो कन्याएँ हैं।
एक तो रक्षिता·······और दूसरी वर्धमानपुर में मेरे मित्र साम्ब की कन्या
अणिमा। उस दिन जब मैं वर्धमानपुर गया था, मैंने देखा उसकी कन्या
विवाह योग्य हो गई है।"

'पिताजी ! जैसा आप उचित समझें, करें। मेरी इस विषय में अपनी
कोई सम्मति नहीं। हाँ, रक्षिता के विषय में मैं अपनी सम्मति नहीं देता वह
तो······ यदि शकुन्त लौट आए तो उसका विवाह भी करना होगा। उसे
बाँधने के लिये यही एक सूत्र है।" "बेटा ! जाजलि धर्मभ्रष्ट को कन्या
देंगे, यह निश्चित नहीं है। दूसरे, शकुन्त ·····लौट तो आएगा······इतना
मुझे विश्वास है, क्योंकि वह वन के कष्ट नहीं सह सकता। शलभ ! तुम
अपना कुल, शील, शिक्षा बता कर मेरे मित्र साम्ब से कन्या के लिये
याचना करो।"

"कुछ समय प्रतीक्षा कीजिए पिताजी ! सम्भव है, शकुन्त शीघ्र
लौट आए।"

"समय प्रतीक्षा नहीं करता शलभ ! साम्ब अपनी कन्या किसी और

को भी दे सकते हैं। मैं ही कल जाकर साम्य से उनकी कन्या की याचना करता हूँ।"

शलभ की इच्छा नहीं थी कि वह इतना शीघ्र विवाह करे। साथ ही उसे रक्षिता की बात अन्दर ही अन्दर खाए जा रही थी। वह चाहता था कि शकुन्त लौट आए तो वह रक्षिता के मुख को पुनः दमकता हुआ देख सके। उसने निश्चय किया, वह शकुन्त को अवश्य ढूँढेगा।

उसे शकुन्त के कहे शब्दों का स्मरण होने लगा। और वे उसके सामने दूसरे रूप में प्रस्तुत होने लगे।........

"आप को तो भ्रमण करने जाना होता है न? आजकल तो पर्याप्त समय लगा आते हैं।"....."नहीं पिताजी! मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। मुझे अपना काम है। इतने दिन उन्हें यहाँ रहते हो गये, क्या अभी भी वे आत्मनिर्भर नहीं हो पाए?"........"भैया! आप ही क्यों नहीं चले जाते। परन्तु आप तो शिक्षित हैं; जंघा, पीठ से होने वाला अधम कर्म क्यों करेंगे!"

जब शकुन्त वन जाने को उद्यत हो गया था तब रक्षिता भी आ गई थी और ओखली के पास गुमसुम बैठी रही थी।

दस दिन पश्चात् सलभ को एक भील से ज्ञात हुआ कि उसने शकुन्त की आकृति से मिलते-जुलते पुरुष को विभु संन्यासी के पास से गहन वन की ओर उन्मत्त बैल की तरह जाते देखा है।

शलभ का सन्देह और भी दृढ़ हो गया कि हो न हो शकुन्त मानसिक तुष्टि के लिये कहीं दूर निकल गया हो।

उसी संध्या ग्रामाध्यक्ष ने सेवक भेज पुष्कर को बुलवाया। श्यूमरश्मि ने पुष्कर को एकान्त में लेजाकर धीमे से कहा: "भगवन्! आपने मेरे ऊपर अनेक उपकार किए हैं। अतः मैं आपको दो महत्त्वपूर्ण समाचार सुनाता हूँ। एक तो यह कि मेरे पिता इन्द्रोत कारावास से मुक्त हो गये हैं। उन्हें मुक्त हुए तो बहुत समय हो गया, परन्तु मुझे आज ही ज्ञात हुआ।........वे आज तक नहीं लौटे। लगता है, वे वहीं से वन की ओर हो गये हैं।"

"बन्धु! वे वन की ओर हो लिये हों......यह निश्चय से कहा जा

सकता है। क्योंकि वे लज्जावान हैं; सम्भव है उन्हें पुनः ग्राम लौटना असह्य लगा हो।"

"एक बात और ······बहुत महत्त्वपूर्ण है। आप इसे गुप्त ही रखें। मुख्याध्यक्ष से मुझे सूचना आई है कि शकुन्त को संदिग्ध जान गुप्तचरों ने पकड़ लिया है और वह अब राजधानी में है।"

पुष्कर का पितृहृदय आशंकित हो गया।

"क्यों ? वह संदिग्ध कैसे हो गया ? वह तो ब्रह्मज्ञान की शिक्षा लेने वन में गया है।"

"ब्रह्मज्ञान की ! आप भूल रहे हैं भगवन् ! द्वैतवन में ठहरे संन्यासी, संन्यासी नहीं, गुप्तचर थे। सुना है, राजा सुयोधन इस वन की सघनता में मन्त्रणा करने आये थे। संयोगवश शकुन्त वहाँ पहुँच गया और राज कर्म-चारियों ने गुप्तचरों की सहायता से उसे पकड़ लिया।"

"अब ?" पुष्कर ने घबराये स्वर में पूछा।

"चिन्ता करने की या घबराने की कोई बात नहीं। निर्दोष सिद्ध होने पर उसे शीघ्र छोड़ दिया जाएगा। मैंने उसके सज्जन पुरुष होने की सूचना दे दी है। साथ ही यह भी कह दिया है कि किसी कारण उसका मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया है।" पुष्कर चिन्तापुर हो लौट आए।

दूसरी प्रातः। एक बहरा-सा और एक अन्धा व्यक्ति ग्राम में प्रविष्ट हुए। बहरे ने अन्धे का हाथ पकड़ रखा था। अन्धा गाता हुआ चल रहा था। बहरा घरों में जा-जा कर भिक्षा के लिए याचना करता। दोनों ने पूरे ग्राम का चक्कर लगाया। पुष्कर के घर बहरे ने भोजन किया और ग्रामाध्यक्ष के घर अन्धे ने। संध्या के समय दोनों भिक्षा लिये वन की ओर हो लिए।

बीसवें दिन अचानक शकुन्त ग्राम में पहुँच गया। सैनिक-वेशभूषा में, कमर में तलवार लटकाये हुए।

चुपचाप आकर झट वह घर में घुस गया। किसी ने कुछ नहीं कहा। वह भी चुप रहा, गुमसुम।

रक्षिता की विशाल आँखों में उस दिन पुनः चमक लौट आई थी।

प्रातः ही संध्योपासना के पश्चात् शलभ ने शकुन्त को बुला कर कहा: "शकुन्त ! मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। उसने शकुन्त की खोजती आँखों में झाँका।

"कहिये !" वह अनमने ढंग से बोला।

"देखो ! मुझे तुम्हारे विषय में कुछ पता लगा है।"

"क्या पता लगा है ?..... यही न कि मैं संदिग्ध व्यक्ति हूँ। राजकर्मचारियों के अधीन रह चुका हूँ। ....परन्तु मैं संदिग्ध नहीं। यह सिद्ध होने पर उन्होंने मुझसे क्षमा मांगी और पुरस्कारस्वरूप सैनिक वेश, व तलवार भेंट की। ....वैसे एक सैनिक के वेश में मैं अब भी उनके अधीन हूँ।"

"नहीं, नहीं। राजकर्मचारियों के अधीन नहीं। एक नवयौवना के अधीन। क्या यह असत्य है ?" वह उछल पड़ा। उसके सामने रक्षिता की धुन्धली आकृति घूम गई।

"...असत्य नहीं, सत्य है। मधुर सत्य। मुझे गुप्तचरों से ज्ञात हुआ है कि....कि....। ठीक-ठीक बताओ, क्या तुम्हारे रक्षिता से सम्बन्ध नहीं थे ?"

"रक्षित....ता !" शकुन्त हड़बड़ाए स्वर में बोला: 'आपको .. आपको किसने बताया भैया ?"

"मुझे ?....स्वयं रक्षिता ने ?" "स्वयं रक्षिता ने ? इतना साहस !" "जब मेघ जल से अत्यधिक भर जाते हैं तो जल स्वतः ही बूँदों के रूप में चू पड़ता है।" तुमने पहले क्यों नहीं बताया ? मन ही मन क्यों खटते रहे ?" शलभ ने उसकी पुष्ट बाँह पकड़ते हुए कहा। "भैया ! मुझे क्षमा करो।" वह भाई के चरणों में झुक गया। "ऐसी ही बात थी तो तुम्हें गान्धर्व विवाह[1] कर लेना चाहिए था।" शलभ ने उसके कन्धे पकड़ते हुए कहा।

"गान्धर्व विवाह ? जाजलि की भावनाओं का भी प्रश्न था। मुझे उनके

---

1. माता-पिता के पसन्द किए वर को छोड़ कन्या जिसे पसन्द करती है तथा जो कन्या को चाहता हो—ऐसे वर के साथ कन्या का विवाह।

सहमत होने में सन्देह था। यह समाचार सुन वे सम्भवतः प्रसन्न नहीं होते। दूसरे बड़े भाई से पहले मैं विवाह करने का दुःसाहस कैसे कर सकता था!"

शलभ को उसकी यह तर्कपूर्ण बात सुन प्रसन्नता हुई।

"पता है, मेरा सम्बन्ध भी तय हो गया है।" शलभ मुस्काते हुए बोल।

"कहाँ?"

"वर्धमानपुर में।"

दोनों भाई प्रसन्नता से गले मिले।

स्वयं शलभ ने उसके सम्बन्ध में जाजलि से बात की। जाजलि को सैनिक-वेश में शकुन्त भला लगा था।

□

ऋतुराज वसन्त का आगमन। दसों दिशाओं में पुष्प ही पुष्प। ग्रामपथ के दोनों ओर की झाड़ियाँ पुष्पों से लद गईं। भौंरे गुनगुनाने लगे। बूढ़े बरगद की शाखाओं में नवीन कोमल कोंपलें फूटने लगीं। सभी सोए हुए वृक्ष, लता अंगड़ाई लेने लगे। साल के वृक्षों ने नया परिधान पहन लिया। सुरेणु के जल में अब कँपा देने वाली शीतलता नहीं रही। वन से शीतलहर की अपेक्षा सुगंधित पवन के झोंके आने लगे। खेतों में पीत रंग पोत दिया गया।

प्रकृति के प्रत्येक जीव के अन्तर की शक्तियाँ एकबारगी बाहर हो जाना चाहती थीं।

रक्षिता और शकुन्त पति-पत्नी के रूप में वन से पुष्प लाने गये थे। वसन्तोत्सव मनाया जा रहा था। कामदेव के अस्तित्व को साकार करने के लिए पुष्पों से सजाना था।

"ग्राम में इतने पुष्प हैं तो वन से क्यों लाते होंगे?" रक्षिता ने पूछा।

"वन्य पुष्पों की अपनी ही छवि, अपनी ही महक होती है रक्षिता! ये प्राकृतिक पुष्प अपने आप उगे हैं; ऐसे उगाये नहीं जा सकते। दूसरे ये मानव के स्पर्श से अछूते रहे हैं।, कहते हैं,समस्त प्राणियों को अपने वश में करने के

लिए कामदेव काम-पुष्पों के धनुष-बाण ही प्रयोग में लाते हैं।"

वे दोनों वन में बहुत दूर निकल गये। एक स्थान पर रुककर शकुन्त ने कहा : "यहीं था विभु का आश्रम।" रक्षिता ने नव-परिधान से सजे बाँसों के झुरमुट की ओर देखा। "अच्छा, ये था।....अब तो आप बताएँगे न अपने वन-गमन की बात ?"

"वन-गमन ? वह तो एक स्वप्न ही हो गया," उसने हँसते हुए कहा : "घर से मैं गया— वैरागी होकर ब्रह्मज्ञान पाने के लिये, आचार्य विभु ने सदा की तरह आनाकानी की। आचार्य विभु....वह तो गुप्तचर था। मुझे क्या उपदेश देता ! और मैं सघन वन की ओर बढ़ता गया....बढ़ता गया। मैं विचार-मग्न-सा जा रहा था कि एक राजकर्मचारी ने मुझे रोक लिया और मेरे सम्बन्ध में पूछा ! मैं घबरा गया और आगे बढ़ने लगा। कर्मचारी ने कहा : आगे मत बढ़ो ! मैं नहीं रुका। उसने दौड़कर मुझे पकड़ लिया। दूसरे ने मेरी आँखों में पट्टी बाँध दी। राजधानी पहुँच कर मेरी आँखें खुलीं। बाद में मुझे पता लगा कि राजा सुयोधन यहाँ मन्त्रणा करने आए थे और इसी कारण मुझे पकड़ा गया।....परन्तु एक लाभ मुझे हुआ।"

"क्या ?" रक्षिता ने पूछा।

"राजधानी में मैंने तलवार चलाना सीख लिया।" "सच !" "एक लाभ और भी हुआ।" "वह क्या ?" "तुम जो मिल गईं।" "मैं !" "हूँ" रक्षिता ने दृष्टि झुका ली। शकुन्त ने एक पुष्प उसकी वेणी में लगा दिया।

उनकी टोकरियाँ पुष्पों से लद गईं थीं। अतः वे वहीं से मुड़ने लगे।

शलभ और अणिमा घर की सफाई कर रहे थे। ग्राम के सार्वजनिक पथ तक उन्होंने अपनी राह साफ कर दी। घर के आस-पास का कूड़ा-करकट उठा दिया।

"विवाह भी हो गया, परन्तु शकुन्त का शैशव नहीं गया।" शलभ ने अणिमा से कहा। "वह कैसे ?" "देखो न ! राजधानी में शस्त्रों का प्रयोग क्या जान आया, अब हर समय वसुदान के पुत्रों से तलवार चलाने का अभ्यास करता रहता है।"

"अपनी-अपनी रुचि है। इसी रुचि के कारण तो उन्होंने रक्षिता को
ाया।" "क्यों ? शस्त्र-संचालन से रक्षिता का क्या सम्बन्ध ?" "माँजी
ह रही थीं कि जाजलि शकुन्त से रक्षिता का सम्बन्ध जोड़ने के लिये कदापि
हीं मानते। जब उन्होंने सुना कि वह शस्त्र-संधान सीख आया है तो
ह शीघ्र सहमत हो गये।"

"जाजलि को शस्त्रास्त्रों की बड़ी बात रहती है। उन्होंने त्रिगर्त्तदेश
युद्ध जो देखा है।"

"शस्त्रास्त्रों का अभ्यास करते राजकुमारों को मैंने भी देखा है।" अणिमा
कुतूहल से कहा। "तब मैं बहुत छोटी थी। अब तो स्वप्न की तरह याद
हा है।"

"तुमने तो नगर में बहुत कुछ देखा होगा। सत्य कहना, तुम्हें ग्राम में
सुविधा तो नहीं होती ? यहाँ तो कोई आकर्षण नहीं है।"

"आकर्षण क्यों नहीं है ? ये नदी, वन, पर्वत। पुष्पों से लदी पृथ्वी। रंग-
रंगा आकाश। अनेक रंग बिखेरते भगवान् अंशुमाली : सब कितना आकर्षक
। नगर में यह सब देखने को कहाँ मिलता है। वर्धमानपुर में तो केवल
ँची दीवारें, परकोटे, बड़े-बड़े दरवाजे ही हैं। और उनमें बंद कृत्रिम दृश्य।
ाकृतिक कुछ भी नहीं।....यहाँ तो अनेक आकर्षण हैं....सबसे बड़ा आकर्षण
हाँ एक और भी है।"

"वह क्या ?" "आप जो हैं।" कह कर अणिमा उसके वक्षस्थल से
ट गई।

दिन ढले वसन्तोत्सव आरम्भ होना था। प्रातः से ही तैयारियाँ हो गई
ीं। सभी ग्रामीण उत्सुकता और व्यस्तता से इधर-उधर घूम रहे थे।
न्होंने अपने वस्त्र रंग लिये थे। घरों की सफाई कर ली थी। हर चीज
ाफ कर सजा दी गई थी।

पुरुषों के शरीर चंदन से सुगन्धित हो रहे थे। उन्होंने पीला उत्तरीय,
ीला अधोवस्त्र, पीला यज्ञोपवीत और पीली ही पुष्पों की माला पहन रखी
ी। स्त्रियों ने भी गोरोचन, चन्दन, उबटन से अपने को मादक बनाया।

अनेक पुष्पों व पत्तों के रंग तैयार किये गये। सुगन्धित जल से वस्त्रों पर छींटे मारे गये।

ग्राम के मध्य, विसाल बरगद के समीप ही ग्याहर व्याम[1] पृथ्वी माप कर कामदेव का अस्तित्व स्वीकारा गया। मण्डप तैयार हो गया। ढेरों पुष्प वहाँ एकत्रित हो गये। आस-पास सबको बैठने के लिये उचित स्थान बनाये गये।

ग्राम-वधुओं ने मंगलगान गाए। सबके मंगल की प्रार्थना की गई। नृत्य हुए। ग्रामीणों ने अपनी–अपनी कला का प्रदर्शन किया। कला की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करते हुए अनेक बेल-बूटों वाले मिट्टी के बरतन, बाँस की टोकरियाँ, लकड़ी के पात्र, लोहे के शस्त्रास्त्र सजाये गये।

मल्लयुद्ध हुए। शकुन्त ने वसुदान के पुत्रों वज्रदत्त तथा क्षत्रदेव से तलवार की लड़ाई का प्रदर्शन किया। जाजलि से भी चुप नहीं बैठा गया। शकुन्त से तलवार ले उन्होंने वसुदान को ललकारा : "वसुदान ! उठो ! तलवार उठाओ और शिखा बाँधलो दोनों ने कई पैंतरे बदल कर युद्ध किया।

संध्या के पश्चात् संयुक्त भोज की व्यवस्था थी। बाँस के खम्भे गाड़कर उल्मुक जगा दिये गये। ग्रामाध्यक्ष ने अन्न की व्यवस्था कर दी। रक्षिता के नेतृत्व में ग्राम-वधुओं ने भोजन बनाया।

रात्रि को समस्त ग्रामपथों में फूल ही फूल बिखरे थे। प्रत्येक निवास-स्थान के आगे लताओं, पुष्पों से द्वार बनाये गये। रमणियों ने द्वारों पर, घरों में घी के दीपक जला कर रख दिये।

---

1. व्याम : दोनों हाथों को फैलाने पर जितनी लम्बाई होती है।

सब शान्तिपूर्वक चलने लगा। जाजलि अब अकेले ही रहते थे। पुष्कर
गृहस्थी का सब काम शलभ को सौंप दिया था। शलभ ने कार्य-विभाजन
दिया था।

शकुन्त अब भी कभी-कभी हीन-भावना से ग्रस्त हो जाता था। वह
वार में छोटा था। सभी कार्य अधिकतर उसे या रक्षिता को करना पड़ता।
मा का उसके प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार था, परन्तु जितना सम्मान शलभ-
मा का होता उतना शकुन्त-रक्षिता का नहीं। धीरे-धीरे शकुन्त पुनः
ा लगा।

वह चाहता था कि भोजन बनाने का कार्य रक्षिता के हाथ सौंप दिया
, क्योंकि वह इस कार्य में कुशल थी। शलभ ने यह कार्य माँ को दिया था।
एक दिन उससे नहीं रहा गया, खाना खाती बार उसने माँ से कहा :
! तुम रक्षिता को रसोई क्यों नहीं सौंप देतीं ?" "रक्षिता को ! क्यों
! मेरा पकाया अच्छा नहीं लगता ?" माँ ने आश्चर्य से पूछा। "नहीं
ऐसी बात तो नहीं फिर भी रक्षिता ने यह काम सीखा है।" उसकी
कृति विकृत हो गई।

"अर्थ यही हुआ न कि तुम्हें मेरा पकाया अन्न नहीं भाता।"

वह चुप रहा। माँ के मन में विषाद हुआ।

"आपको ऐसे नहीं कहना चाहिए था। माँजी को दुःख हुआ होगा।"
मा ने कहा।

"क्यों नहीं कहना चाहिए ? क्या मेरा इस परिवार में कोई अस्तित्व
? रक्षिता का कोई मूल्य नहीं ?" वह फूट पड़ा।

"आपको पता नहीं कभी-कभी क्या हो जाता है ! इतना क्रोध क्यों

करते हैं ? माँजी को इस तरह कहने का आपको क्या अधिकार है ?" रक्षिता ने कहा।

"मैंने असत्य नहीं कहा। यथार्थ ही सामने रखा है।" कहता हुआ वह बाहर हो गया।

मिश्रकेशी मन ही मन दुःखित थी। उसने साँझ को पुष्कर से कहा: "आज शकुन्त ने मेरा अपमान किया है।"

"तुम्हारा अपमान ?" वे चौंके। शलभ भी पास ही था। यह सुन बोला:

"क्या कहा माँ ! तुम्हारा अपमान किया है ! तो इसमें क्या आश्चर्य है ? मैं भी तो तुम्हारा अपमान कर सकता हूँ।"

माँ ने आँखों में आँसू ला शलभ की ओर देखा: "तुम भी ! हाँ, इसीलिये तो तुम्हें जन्मा है।"

"माँ ! दुःखी होने की कोई बात नहीं," उसने धीमे से कहा: "विवाहित बेटे माँ का अपमान करते ही आए हैं। यह कोई नई बात नहीं।"

"नीति में कहा है—शिष्य शिक्षा समाप्ति पर आचार्य का; विवाहित बेटे माता का; पुरुष काम-वासना तृप्ति पर नारी का; कृतकार्य पुरुष सहायक का; धारा पार करने पर नाव का; रोगी ठीक होने पर वैद्य का—यह छः अपने पूर्व उपकारी का अनादर करते ही हैं। माँ ! तुम चिन्ता न करो। मैं उसे समझाऊँगा। इसीलिये तो सब वर्णों के लिए शास्त्रज्ञान आवश्यक बताया है। यह सब शिक्षा में अरुचि का ही प्रभाव है। उसे कहें तो बुरा मान जाता है।"

शकुन्त के आने पर शलभ ने उसे बुलाकर कहा:

"भैया ! सुना है, तुमने माँ के प्रति रोष प्रकट किया है। यह उचित नहीं। माँ को पृथ्वी से महान् बताया गया है। तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए।"

वह शलभ के सामने बहुत छोटा पड़ जाता था। एक अज्ञात शक्ति उस पर दबाव डाल देती।

"भैया ! मैंने ऐसे ही जरा रसोई के सम्बन्ध में कहा था।" उसने धीमे से कहा।

"शकुन्त ! मैंने ही माँ को रसोई का कार्य सौंपा है। मैंने भी यह कार्य अपनी इच्छा से नहीं किया। नीति-शास्त्र की इच्छा से ही किया है। नीति में कहा है—गृहस्थ अंतःपुर का कार्य पिता को, रसोई-घर का माता को दे-दे। गौओं की सेवा में अपने-सा व्यक्ति नियुक्त करे और कृषि कार्य स्वयं करे।...."

"भैया ! आप तो सदा ही अपनी नीति की बात करते हैं।"

"शकुन्त ! पुरातन महान् ऋषियों ने असत्य नहीं कहा है। अनुभव के आधार पर ही ये बातें कही गई हैं। यह नीति के वाक्य मधुर सत्य हैं और इनके अनुसार जीने से शान्ति मिलती है।....माँ वृद्ध है। उन्हें सुगम कार्य चाहिए। ठीक है, रक्षिता पाक-कार्य में निपुण है। मैंने इसके हाथ के बने व्यंजन खाए हैं। वह माँ की सहायता करे, यह उत्तम है। परन्तु माँ को तुम्हें ऐसे नहीं कहना चाहिए था। बात करने का भी ढंग होता है।"

"भैया ! मैंने माँ को क्रोध से नहीं कहा। बात तो मेरी अरिणमा से हुई।"

"बात माँ से हो या अरिणमा से या रक्षिता से; नारी का अपमान नहीं करना चाहिए। स्त्रियाँ घर की लक्ष्मीं कही गई हैं। वे अत्यन्त सौभाग्य-शालिनी, पूजा-योग्य, पवित्र और घर की शोभा होती हैं। अब जाओ ! माँ से क्षमा मांगो।"

शकुन्त को अपनी भूल का आभास हुआ। तुरन्त जाकर उसने माँ और भाभी के चरण छुए।

कालचक्र स्वाभाविक गति से चलता रहा। शलभ के यहाँ कन्या उत्पन्न हुई। जाजलि ने उसका नाम शक्ति रखा। रक्षिता गर्भवती थी।

एक दिन जाजलि ने प्रसन्न हो पुष्कर से कहा :

"पुष्कर ! मैंने सुना है, मत्स्यदेश का सेनापति कीचक मारा गया। मारा गया अपने ही कुकर्मों के कारण। महारानी विराट की दासी के कारण.... अन्त में पापी मारा ही गया। सुना है, राजा सुयोधन सेना सहित मत्स्यराज विराट से हार गया। त्रिगर्त्तराज सुशर्मा और सुयोधन ने मिलकर दो तरफ

से विराट का गोधन हर कर आक्रमण किया; फिर भी विराट और उसके पुत्र उत्तर ने दोनों को ही हरा दिया। कहते हैं, कोई दैवी शक्ति वाले पुरुष विराट की सेवा में आए हैं।''

''मैंने तो ग्रामाध्यक्ष से यह सुना कि अज्ञातवास के अन्तिम वर्ष में पाण्डव-गण ही वेश बदल कर वहाँ रह रहे थे और उत्तर के साथ अर्जुन ने ही हमारे महाराज को हराया है। कौरव ऐसे किसी से हारने वाले नहीं। वे आज तक पराजित नहीं हुए। अर्जुन तो अपना ही बान्धव है।''

''अपना ही बान्धव! आश्चर्य है! अपने महाराज की पराजय पर पर्दा डालने के लिये तुम बान्धव होने का सहारा ले रहे हो।'' जाजलि ने हँसते हुए कहा।

''अब··· अब पाण्डव प्रकट हो गये हैं। महाराज धृतराष्ट्र उन्हें फिर से आधा राज्य दे देंगे।'' पुष्कर ने जाजलि की बात अनसुनी कर कहा।

''यह तो समय ही बताएगा पुष्कर! शस्त्रास्त्र-संग्रह दोनों पक्षों ने ही पर्याप्त कर लिया है। वनवास में धनुर्धर अर्जुन ने अनेक दिव्यास्त्र प्राप्त किये। उधर सुयोधन ने राजधानी में अपनी स्थिति दृढ़ कर ली।''

''जाजलि! आपकी बुद्धि बुरा ही सोचती है।'' पुष्कर ने खिन्न हो कहा।

शकुन्त ने अब वन जाना छोड़ दिया था। वह पर्याप्त लकड़ियों का संग्रह कर चुका था। संध्या के समय अब वह वज्रदत्त तथा क्षत्रदेव के साथ तलवार, गदा, तोमर, ऋष्टि, फरसे, शक्ति आदि चलाने का अभ्यास करता। पुष्कर उसके इस कार्य से चिढ़ जाते थे। वे नहीं चाहते थे कि शकुन्त यह कर्म सीखे। उन्होंने कहा भी : ''शकुन्त! तुमसे कितनी बार कहा कि यह अपना ब्राह्मणों का कर्म त्याग क्यों क्षत्रिय-कर्म के पीछे पड़े हो! अब तो कुछ महीनों में तुम भी पिता बन जाओगे, परन्तु तुम्हारी मति स्थिर नहीं हुई।''

जाजलि भी वहीं खड़े उनका हस्तकौशल देख रहे थे। वे बोले: "पुष्कर ! ा है अब तो शस्त्र-संग्रह के साथ-साथ दोनों पक्षों ने सैन्य-संग्रह भी आरम्भ : दिया है।"

'जाजलि ! तुम कभी भी शुभ समाचार नहीं लाते। देखो, तुम्हारे मने ही सन्धि हो जाएगी। अभी पाण्डवों ने कोई सन्देश तो भेजा ही नहीं।"

'सन्देश भी भेजेंगे। उसका परिणाम भी सामने आ जाएगा।" जाजलि जाते हुए कहा।

# ७

ग्रीष्मकाल की उष्णता सब ओर उकताहट बिखेर रही थी। लम्बे-लम्बे ऊबा देने वाले दिन, चारों ओर दम घुटा देने वाली नीरवता। कहीं-कहीं पुकारते पपीहरे वातावरण को और भी उदास कर रहे थे। प्रातः सायँ के सिवा कभी भी जीवन के चिह्न दिखाई नहीं देते। सुरेणु का जल भी सहमा-सा रेत में छुप गया था। समूचे ग्राम पर मुर्दनी-सी छाई थी।

सायंकाल ग्रामाध्यक्ष ने समिति की बैठक बुलाई। बरगद के नीचे सभी ग्रामीण एकत्रित हुए। स्थूमरश्मि ने उठकर कहना आरम्भ किया: ‘‘बन्धुओ! राजधानी से कुछ अच्छे समाचार नहीं आ रहे हैं। राजा सुयोधन ने सैन्य-संग्रह आरम्भ कर दिया है। उधर पाण्डवों की प्रतिक्रिया भी प्रगति पर होने की सूचना मिली है। मुख्याध्यक्ष के आदेश आए हैं कि सभी प्रजाजन तैयार हो जाएँ। अतः आपको सूचित किया जाता है कि किसी भी परिस्थिति के लिए हमें तैयार रहना होगा।’’

सभी विचारमग्न थे। किसी ने कोई सम्मति प्रकट न की। ग्रामाध्यक्ष जैसे निर्जीव काठ को सम्बोधित कर चला गया। आती बार जाजलि ने कहा : ‘पुष्कर ! कहो, मैंने असत्य कहा था ! जो शस्त्रास्त्र बने हैं उनका प्रयोग निश्चित है।’’

‘‘बन्धु ! मुझे खेद यही है कि शस्त्र किसी शत्रु पर न उठकर, किसी अत्याचारी का दमन न कर अपने ही बान्धवों पर चलने वाले लगते हैं। किन्तु अभी भी···अभी भी एक किरण है····एक आशा की किरण ! सुना है श्रीकृष्ण सन्धि का प्रस्ताव ले हस्तिनापुर आ रहे हैं।’’

कालचक्र अपनी धुरी के गिर्द निरन्तर घूम रहा था। कुछ दिन और सरके।

"उमंग से पुनः आयुधों की मांग की गई है।" शकुन्त ने कहा।

"हूँ !" पुष्कर ने निःश्वास छोड़ा।

"वज्रदत्त और क्षत्रदेव ने भी शस्त्राभ्यास सुचारु रूप से आरम्भ कर दिया है। आजकल वे अभ्यास करने वन की ओर जाते हैं।

"पिताजी ! मुझे भी··· मुझे भी नियमपूर्वक शस्त्राभ्यास करना चाहिए।"

"बेटा ! तुम भी नियमपूर्वक शस्त्राभ्यास करना चाहते हो।" पुष्कर ने धीमे से कहा।

"पिताजी ! अभ्यास करने में क्या दोष है ?"

पुष्कर चुप रहे। उन्हें मालूम था शकुन्त जो बात कह देता है वह किए बिना नहीं रहता।

एक दिन सर्वत्र यह समाचार ग्रीष्म की चिलचिलाहट के बाद वर्षा की पहली फुहार-सा फैल गया कि श्रीकृष्ण हस्तिनापुर आ रहे हैं। सबसे अधिक प्रसन्न थे तो वृकस्थल के निवासी, क्योंकि श्रीकृष्ण राजपथ को छोड़ उसी मार्ग से आ रहे थे।

सारे ग्राम को सजाया गया। मुख्य-पथ पर फूल बिछाये गये। अन्य राहों को भी शृंगारित किया गया। स्थान-स्थान पर छाया का प्रबन्ध किया गया। वन से केले के पेड़, शाखाएँ लाकर मुख्य-पथ को दोनों ओर से सजाया गया। दोनों ओर अमलतास के घुंघरू लटकाये गये।

स्वच्छ और ताजे मधु-फलों का प्रबन्ध किया गया। ग्रामवासियों ने सुन्दरवन के ताल से स्वच्छ निर्मल जल बैलगाड़ियों पर ढोया। सेना के लिए वन की छायादार भूमि को साफ कर दिया गया।

दोपहर को सुना गया कि श्रीकृष्ण शालियवन में विश्राम करके सायंकाल तक वृकस्थल पहुँचने वाले थे। कुछ सैनिक उनसे पहले ही वन में और वृकस्थल में आ जमे।

स्वागत की तैयारियाँ बढ़ गईं। श्रीकृष्ण के स्वागत के लिये सुरेणु के पार का खुला तट चुना गया। वहाँ भूमि को स्वच्छ कर मंच बनाया गया और प्रजा के खड़े होने के लिए उचित ऊँची भूमि रखी गई।

सब प्रबन्ध होने पर ग्रामाध्यक्ष तथा मुख्य-मुख्य ग्रामीण श्रीकृष्ण की आतुरता से प्रतीक्षा करने लगे।

सायंकाल····पश्चिम की ओर से धूल का बवण्डर उड़ता आया और संध्या की सूर्य-किरणों ने उसे रंग दिया। रथों की घरघराहट से वातावरण गूँज उठा। एक साथ ग्यारह रथ वृकस्थल के पास वन में आ रुके। फिर सैकड़ों घुड़सवार जहाँ-तहाँ वन में बिखर गये।

समस्त ग्रामवासी श्रीकृष्ण के स्वागत के लिये पुष्पों की मालाएँ लेकर चले। श्रीकृष्ण रथ से उतर ग्राम की ओर जाना ही चाहते थे कि ग्रामाध्यक्ष आदि सभी मुख्य ग्रामीण अभीष्ट स्थान पर पहुँच गये। इधर-उधर के ग्रामों से भी अपार जन-समूह उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ा था।

श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों को पहचान नमस्कार किया। ब्राह्मणों ने उन्हें आशीर्वाद दिया। सभी ने पुष्पों की मालाएँ श्रीकृष्ण को पहना दीं और चारों ओर से उन पर पुष्पों की वर्षा होने लगी।

ग्रामीणों को श्रीकृष्ण को देख रोमांच हो आया। उन्होंने श्रीकृष्ण के अद्‌भुत कर्म सुन रखे थे और सुना था कि श्रीकृष्ण परमात्मा के अवतार हैं। तरह-तरह की कल्पनाएँ उन्होंने की थीं। उन्हें यह जान आश्चर्य हुआ कि श्रीकृष्ण उन्हीं जैसे दो हाथ, दो पाँव वाले साधारण मानव की तरह थे। शकुन्त श्रीकृष्ण को देख बड़ा प्रभावित हुआ। पाण्डवों के परम हितैषी श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में उसने बहुत कुछ सुन रखा था। उनके श्यामवर्ण, आकर्षक मुख, सुडौल बलिष्ठ शरीर और तेजोमयी आँखों को देख उसे बहुत प्रसन्नता हुई।

ग्रामीणों ने श्रीकृष्ण की अर्घ्य, आचमनीय मधुपर्क आदि से पूजा की।

श्रीकृष्ण ने कहा : "बन्धुओ! हम पाण्डवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव ले हस्तिनापुर जा रहे हैं। आज रात यहीं रहेंगे।"

"यह हमारा अहोभाग्य है भगवन् ! जो आप यहाँ ठहरे। यहाँ आपको असुविधा तो होगी, परन्तु सभी ग्रामवासी आपका यथाशक्ति आतिथ्य करेंगे। आज आपने यहाँ ठहर हमारा ग्राम पवित्र कर दिया है।" स्यूमरश्मि ने कहा।

श्रीकृष्ण को ग्रामध्यक्ष के घर ठहराया गया। सभी महारथी, घुड़सवार तथा रात्रि को पहुँचने वाली पैदल सेना ने वन में जहाँ-तहाँ खेमे लगा दिए। सेना के पास अपनी भोजन, सामग्री थी। श्रीकृष्ण तथा उनके अभिन्न सहचरों के लिए पुष्कर के घर भोजन तैयार हुआ। सामग्री ग्राम-वासियों ने ला दी।

भोजन के उपरान्त पुष्कर ने श्रीकृष्ण से पूछा : "भगवन् ! आप तो कौरवों-पाण्डवों के इस मतभेद को नीति द्वारा और बलपूर्वक भी समाप्त कर सकते हैं।"

"प्रयत्न तो मैं करूँगा। यदि आपके महाराज ने उन्हें राज्य का आधा या कुछ भाग भी दे दिया तो सन्धि हो ही जाएगी। दूतों, मन्त्रियों द्वारा सन्तोषजनक उत्तर न पाकर मैं स्वयं ही जा रहा हूँ।"

अपने विश्वासपात्र साथियों सहित श्रीकृष्ण के शयन के लिए जाने के बाद शकुन्त ने पुष्कर को पूछा : "पिताजी ! श्रीकृष्ण तो साधारण राजाओं की तरह ही हैं। उन्हें लोग इतना महत्त्व क्यों देते हैं ?"

"उनके अतिमानुषिक कर्मों के कारण बेटा ! जिस प्रकार ब्रह्मज्ञान का तत्त्वज्ञाता ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। वह स्वयं सत्यस्वरूप परमात्मा के समान हो जाता है। श्रीकृष्ण महायोगी हैं, राजनीतिज्ञ हैं, शास्त्र-ज्ञाता हैं। समान हाड-मांस का मनुष्य इन्हीं गुणों से महान् बनता है। वह आकाश से नहीं उतरता; जन्मता तो किसी माँ के उदर से ही है। जब वह साधारण मनुष्यों से ऊपर उठ जाता है जो अपने महान् कर्मों द्वारा परमात्मा का उपाधि धारण करता है।"

ब्राह्ममुहूर्त में ही श्रीकृष्ण सेवकों, सेना सहित जाने को उद्यत हो गये। ग्रामवासियों ने हाथ जोड़ विदा दी। पुष्कर ने विनम्र स्वर में कहा : "महाराज! लौटती बार भी यहीं से आने की कृपा करें।"

"देखो, यह सन्धि की बात पूर्ण हो गई तो यहीं से लौटने का वचन देता हूँ अन्यथा नहीं।"

और यदुकुलवंशी श्रीकृष्ण चले गये। ग्रामवासी उनके लौटने की राह देखते रहे।

# ८

वर्षाऋतु भी बीत गई। कार्तिक का महीना आ लगा। वातावरण में ठण्डक छाने लगी। नई कोंपलें फूटने लगीं। ग्रीष्म-शीत का संगम—क्षणिक वसन्त से प्रकृति झूम उठी। दिन घटने लगे रात्रि का विस्तार होने लगा।

"आज उमंग भी चला गया।" शलभ ने धीमे से कहा।

"उमंग चला गया……क्या अब वहीं शस्त्र-निर्माण करेगा……वहीं ….अपने ही बान्धवों की मृत्यु के लिये ?….नहीं ! बान्धव नहीं शत्रु।" पुष्कर बुदबुदाए।

नवीन कोंपलें सूखने लगीं। पत्ते अकड़ने लगे। कौओं की काएँ-काएँ बढ़ गई।

ग्राम में हर तरफ उदासी छाई थी। सबों के मन पर एक बोझ छा गया था। एक अदृश्य दबाव ने सबको बोझिल कर दिया था। एक आतंक सबके हृदयों में समा गया था।

सभी इधर-उधर सहमे से देखते। जहाँ भी दो-तीन व्यक्ति इकट्ठे होते; औरों के मन में शंका जाग्रत हो जाती….कहीं युद्ध-समाचार तो नहीं ! संयत दीख रहे थे तो केवल जाजलि।

"आप पर युद्ध के आतंक का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। क्या आपने सुना नहीं, उमंग राजधानी चला गया है ?" जाजलि से पूछा गया।

"उमंग चला गया….मुझे ज्ञात है। अब समंग भी चला जाएगा। मैं इस आतंक से परिचित हूँ पुष्कर ! इसी के भय से तो मैं त्रिगर्तदेश से भागा था। अब यहाँ भी वही ….अब कहाँ जाऊँ, कहाँ भागूँ पुष्कर ! बताओ कहाँ जाऊँ ?"

सभी घोड़ों की टाप का शब्द सुनाई दिया। पुष्कर-जाजलि दोनों के चेहरों के रंग उड़ गये।

"राजकर्मचारी जाजलि ! मैं जीवन में प्रथम बार इस भूमि पर राजकर्मचारियों के पांव पड़ते देख रहा हूँ। एक बार मुख्याध्यक्ष के सैनिक इन्द्रोत को ले गये थे। वह तो छूट कर वन भाग गया, किन्तु····किन्तु····!" अकस्मात ढोल पीटने की आवाज ने सबको चौकन्ना कर दिया।

पुरुष बाहर निकल आए। स्त्रियाँ झाँकने लगीं। बच्चे सहमे-से दुबक गये।

एकाएक ढोल की आवाज रुक गई और एक पुरुष स्वर वातावरण में उभरा : "बन्धुओ ! सभी को महाराज की ओर से सन्देश है। सुनिए ! ····सज्जनो ! शताब्दियों पश्चात् कुरुदेश पर आपत्ति आई है। शत्रुओं के आक्रमण का सन्देह है। इस घोर संकट के समय, मैं आप लोगों की रक्षा के लिए धन चाहता हूँ, तन चाहता हूँ, मन चाहता हूँ। जब संकट टल जाएगा, आप लोगों को आपकी सम्पत्ति लौटा दी जाएगी।"

राजकर्मचारी सारे गाँव में ढिंढोरा पीट गये। सभी ग्रामीण सुन्न हो गये थे, जैसे उनके स्वजनों की मृत्यु का सन्देश आया हो।

लम्बी रातें काटे न कटती थीं। राजधानी से समाचार अच्छे नहीं आ रहे थे। शलभ, पुष्कर सभी ग्रामीणों को दिलासा देते। शकुन्त का वज्रदत्त व क्षत्रदेव के साथ शस्त्राभ्यास का समय बढ़ गया था।

एक दिन वसुदान के दोनों पुत्र भी चले गये। सारे ग्राम ने उन्हें विदाई दी।

ग्रामाध्यक्ष को मुख्याध्यक्ष ने बुला भेजा। वे कुछ समय के लिये पुष्कर को कार्य सौंप चले गये।

मुख्याध्यक्ष के पास से वापस आते ही स्यूमरश्मि ने ग्राम में यह घोषणा करवा दी कि वृद्धों, बालकों तथा स्त्रियों को छोड़ सभी वर्णों के लोगों को किसी भी समय बुलाया जा सकता है। अतः सभी तैयार रहें।

आकाश का क्षीण सूर्य झिझकता हुआ चमकता और शीघ्र ही हिच-किचाता हुआ आकाश के एक ओर से खिसक जाता। सुरेणु भी अब चुपचाप बिना शब्द किए बहती। ग्राम में दिन भर कौए काँव-काँव करते रहते। ग्रामीण निःशब्द हो गये थे। न किसी की ऊँची आवाज सुनाई देती, न बच्चों के रोने की आवाज, न हँसी-खुशी।

अणिमा अपनी बच्ची को सीने से चिपटाये रहती। गर्भवती रक्षिता भी अन्दर ही अन्दर रहती। शकुन्त चुपचाप चोरों की तरह काम करता। शलभ ग्रामीणों को ढांढस बन्धाता। माग्र के कुम्भकार, शस्त्रनिर्माता, शिल्पी, सेवक सब जा चुके थे। उनके बच्चे, वृद्ध और स्त्रियाँ ही शेष थीं।

एक दिन पुनः घोड़े धूल उड़ाते आए। ग्रामीण किसी अज्ञात आशंका से सिहर गए। बिना पुरुषों के स्त्रियाँ, बिना पुरुष आश्रय के शिशु; सब दुबक गए। पुष्कर, जाजलि, शलभ, शकुन्त बाहर निकल आए।

वातावरण की नीरवता को भंग करता ढोल फिर बज उठा। कौए काँव-काँव करते उड़ गये। कबूतर गुटर-गूँ करते भड़फड़ाने लगे।

एक पुरुष स्वर गूँज उठा : "सज्जनो! जैसा कि आपको विदित है, कुरुजांगल देश पर आपत्ति आई है। शीघ्र आक्रमण होनेवाला है। परन्तु आपको यह जानकर हर्ष होगा कि शत्रु नगर पर आक्रमण न करके एक स्थान पर युद्ध करेगा। अतः देश की प्रजा पर आँच न आएगी। परन्तु दोनों पक्षों ने युद्ध के लिए स्थान यही कुरुक्षेत्र चुना है। शीघ्र ही यहाँ दूर-दूर तक दोनों पक्षों की सेनाओं के शिविर लगेंगे। अतः आपसे सानुरोध प्रार्थना है कि आप यह ग्राम प्रान्तर छोड़ शालियवन की ओर चले जाएँ या जहाँ भी युद्ध की सीमा से बाहर आपको उपयुक्त स्थान मिले, बस जाएँ। युद्धोपरान्त आप पुनः यहाँ आ सकते हैं।"

ग्राम-भर में सन्नाटा छा गया। पुष्कर, जाजलि, शलभ, शकुन्त, वसुदान, स्यूमरश्मि सभी प्रस्तर-प्रतिमा बन खड़े थे।

तभी घोड़ों की टाप का शब्द सुनाई दिया। पुष्कर-जाजलि दोनों के चेहरों के रंग उड़ गये।

"राजकर्मचारी जाजलि ! मैं जीवन में प्रथम बार इस भूमि पर राजकर्मचारियों के पांव पड़ते देख रहा हूँ। एक बार मुख्याध्यक्ष के सैनिक इन्द्रोत को ले गये थे। वह तो छूट कर वन भाग गया, किन्तु···किन्तु····!" अकस्मात ढोल पीटने की आवाज ने सबको चौकन्ना कर दिया।

पुरुष बाहर निकल आए। स्त्रियाँ झाँकने लगीं। बच्चे सहमे-से दुबक गये।

एकाएक ढोल की आवाज रुक गई और एक पुरुष स्वर वातावरण में उभरा : "बन्धुओ ! सभी को महाराज की ओर से सन्देश है। सुनिए ! ····सज्जनो ! शताब्दियों पश्चात् कुरुदेश पर आपत्ति आई है। शत्रुओं के आक्रमण का सन्देह है। इस घोर संकट के समय, मैं आप लोगों की रक्षा के लिए धन चाहता हूँ, तन चाहता हूँ, मन चाहता हूँ। जब संकट टल जाएगा, आप लोगों को आपकी सम्पत्ति लौटा दी जाएगी।"

राजकर्मचारी सारे गाँव में ढिंढोरा पीट गये। सभी ग्रामीण सुन्न हो गये थे, जैसे उनके स्वजनों की मृत्यु का सन्देश आया हो।

लम्बी रातें काटे न कटती थीं। राजधानी से समाचार अच्छे नहीं आ रहे थे। शलभ, पुष्कर सभी ग्रामीणों को दिलासा देते। शकुन्त का वज्रदत्त व क्षत्रदेव के साथ शस्त्राभ्यास का समय बढ़ गया था।

एक दिन वसुदान के दोनों पुत्र भी चले गये। सारे ग्राम ने उन्हें विदाई दी।

ग्रामाध्यक्ष को मुख्याध्यक्ष ने बुला भेजा। वे कुछ समय के लिये पुष्कर को कार्य सौंप चले गये।

मुख्याध्यक्ष के पास से वापस आते ही स्यूमरश्मि ने ग्राम में यह घोषणा करवा दी कि वृद्धों, बालकों तथा स्त्रियों को छोड़ सभी वर्णों के लोगों को किसी भी समय बुलाया जा सकता है। अतः सभी तैयार रहें।

आकाश का क्षीण सूर्य झिझकता हुआ चमकता और शीघ्र ही हिचकिचाता हुआ आकाश के एक ओर से खिसक जाता। सुरेणु भी अब चुपचाप बिना शब्द किए बहती। ग्राम में दिन भर कौए काँव-काँव करते रहते। ग्रामीण निःशब्द हो गये थे। न किसी की ऊँची आवाज सुनाई देती, न बच्चों के रोने की आवाज, न हँसी-खुशी।

अणिमा अपनी बच्ची को सीने से चिपटाये रहती। गर्भवती रक्षिता भी अन्दर ही अन्दर रहती। शकुन्त चुपचाप चोरों की तरह काम करता। शलभ ग्रामीणों को ढांढस बन्धाता। माग्र के कुम्भकार, शस्त्रनिर्माता, शिल्पी, सेवक सब जा चुके थे। उनके बच्चे, वृद्ध और स्त्रियाँ ही शेष थीं।

एक दिन पुनः घोड़े धूल उड़ाते आए। ग्रामीण किसी अज्ञात आशंका से सिहर गए। बिना पुरुषों के स्त्रियाँ, बिना पुरुष आश्रय के शिशु; सब दुबक गए। पुष्कर, जाजलि, शलभ, शकुन्त बाहर निकल आए।

वातावरण की नीरवता को भंग करता ढोल फिर बज उठा। कौए काँव-काँव करते उड़ गये। कबूतर गुटर-गूँ करते भड़फड़ाने लगे।

एक पुरुष स्वर गूँज उठा : "सज्जनो! जैसा कि आपको विदित है, कुरुजांगल देश पर आपत्ति आई है। शीघ्र आक्रमण होनेवाला है। परन्तु आपको यह जानकर हर्ष होगा कि शत्रु नगर पर आक्रमण न करके एक स्थान पर युद्ध करेगा। अतः देश की प्रजा पर आँच न आएगी। परन्तु दोनों पक्षों ने युद्ध के लिए स्थान यही कुरुक्षेत्र चुना है। शीघ्र ही यहाँ दूर-दूर तक दोनों पक्षों की सेनाओं के शिविर लगेंगे। अतः आपसे सानुरोध प्रार्थना है कि आप यह ग्राम प्रान्तर छोड़ शालियवन की ओर चले जाएँ या जहाँ भी युद्ध की सीमा से बाहर आपको उपयुक्त स्थान मिले, बस जाएँ। युद्धोपरान्त आप पुनः यहाँ आ सकते हैं।"

ग्राम-भर में सन्नाटा छा गया। पुष्कर, जाजलि, शलभ, शकुन्त, वसुदान, स्यूमरश्मि सभी प्रस्तर-प्रतिमा बन खड़े थे।

अकस्मात् जाजलि ने उच्च स्वर में कहा : "यह अनुरोध है या राजाज्ञा ?"

"यह अनुरोध ही है श्रीमन् ! राजाज्ञा नहीं । समीप ही युद्ध होगा । दिव्यास्त्रों का प्रयोग होगा जिनसे सम्पूर्ण विश्व का विध्वंस हो सकता है । अत: सम्भव है ग्राम को क्षति पहुँचे और निर्दोष प्रजा मारी जाए । इसी कारण आपको कहा जा रहा है ।"

"तो सुनिए ! चाहे यहाँ एक भी प्राणी न रहे, किन्तु मैं इस भूमि को नहीं छोड़ूंगा । वानप्रस्थ धर्म के नियमों का पालन करता हुआ मैं यहाँ जमा रहूँगा । आप महाराज को कह दें कि जाजलि नामक ब्राह्मण वृकस्थल से नहीं हिलेगा । चाहे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग हो, चाहे नारायणास्त्र का ।"

"यह आपकी इच्छा है भगवन् ! किन्तु आपको आयुधों से कहीं क्षति पहुँची तो हम उसके लिये उत्तरदायी नहीं होंगे । यह हम ग्रामाध्यक्ष से कहलवा लेंगे ।"

"ठीक है । मैं इस ग्राम को कदापि नहीं छोड़ूँगा ।"

दूसरे प्रात: ही सभी अपना-अपना सामान बाँधने लगे । आवश्यक समान बैलों पर लादा गया । जाजलि ने अपना बैल-गौ पुष्कर को दे दिये ।

हर ओर चुपचाप सिसकने की आवाज आ रही थी । पुष्कर-मिश्रकेशी, शलभ-शकुन्त, वसुदान, स्यूमरश्मि सभी बार-बार अपने घरों को निहार रहे थे । जिस भूमि पर वे शैशव से खेले थे, पले थे, उसे छोड़ना पड़ रहा था । प्रत्येक की आँखों में आँसू थे । पुष्कर अपने लगाये पेड़-पौधों को सहला रहे थे । घरों के आस-पास मौन खड़े आम, बेर, केले, बाँस तथा फूलों की बेलें सब सिसक रहे थे । वैश्य महिलाएँ अपने खेतों की ओर स्नेह-भरी दृष्टि से देख रही थीं ।

स्यूमरश्मि हाथ बाँधे ग्राम-पथ पर इधर से उधर घूम रहे थे ।

सब तैयारी हो गई । सामान बैलों पर, बैलगाड़ियों पर लाद दिया गया । ओखली, मूसल, सिल आदि भारी सामान वहीं छोड़ना पड़ा ।

सबके समझाने-बुझाने पर भी जाजलि नहीं माने। उन्होंने कहा : "बन्धुओ ! मैं वृकस्थल को नहीं छोड़ सकता। यह मेरी प्रतिज्ञा है। मैं आपको युद्ध का समाचार सुनाता रहूँगा। आप सब शालियवन के पास ही कहीं वस जाना। सारी पृथ्वी एक-सी ही है। जहाँ भी आप बस जाएँगे वहीं वृकस्थल बन जाएगा। अतः आप विना मन में किसी प्रकार का विषाद लिए यहाँ से जाएँ। मैं प्रतिदिन आपको युद्ध-समाचार दे दिया करूँगा।

वसुदान अपनी पुरानी जंग लगी तलवार गाड़ी में रख रहा था। अचानक वह गरज उठा : "जाजलि ! यह भूमि हमारे पूर्वजों की पूजनीय है। मैं भी इसे त्याग नहीं सकता। मैं यहाँ से किसी दूसरे स्थान पर बसने नहीं जाऊँगा। मैं अभी राजधानी जा रहा हूँ। अभी भी मेरी भुजाओं में बल है। महात्मा भीष्म, द्रोण और आचार्य कृप से तो मैं बूढ़ा नहीं ! मैं यहाँ क्यों सड़ता रहूँ ! देश का संकट टालने जब मेरे दोनों पुत्र चले गये हैं, तो मैं क्यों रुकूँ ?" और आयुध उठा वह जाने को उद्यत हो गया।

"मैंने भी तो शस्त्राभ्यास किया है। राजकर्मचारियों ने मुझे सैनिक परिधान भेंट किया है, तलवार दी है। किसलिये ?........इसी समय के लिये। पिताजी ! मैं भी वसुदानजी के साथ जा रहा हूँ।" शकुन्त चिल्ला उठा।

"मैं भी तो युवक हूँ। मैं भी मन्त्रणा कर सकता हूँ। समय पड़ने पर शास्त्र के स्थान पर शस्त्र भी उठा सकता हूँ। मैं क्यों बैठा रहूँ ?" शलभ भी उठ गये।

पुष्कर अवाक् खड़े थे। वे भी बोल उठे : "अरे ! मैंने भी तो सारी उम्र राजा का अन्न खाया है। मैंने ही क्यों ? शताब्दियों से मेरे पूर्वज इसी धरा की धूल में पले हैं, इसी कुरुवंश की छाया में, क्या मैं इसी समय के लिए नहीं ?"

तभी स्यूमरश्मि बोल उठा : "यदि आप चले गये तो इन असहाय स्त्रियों, बच्चों की देख-भाल कौन करेगा ? आप नहीं जाएँगे !"

"नहीं स्यूमरश्मि ! मुझे मत रोको !"

"भगवन् ! हो सकता है मुझे मुख्याध्यक्ष का आदेश आ जाए। यहाँ से सभी स्त्रियों, बच्चों को कौन ले जाएगा ? ब्रह्मन् ! मुझे कहना पड़ रहा है

कि यह मेरा, ग्रामाध्यक्ष का आदेश है कि आप नहीं जाएँगे।" पुष्कर निरुत्तर हो गये।

शलभ-शकुन्त तैयार हो गये। एक के पास शस्त्र था तो दूसरे के पास शास्त्र। शकुन्त ने कहा : "भैया! आश्रम से आते ही मैंने कहा—मैं शास्त्र नहीं शस्त्र उठाऊँगा। आज मेरा वचन पूरा हुआ।....आज मैं अपने को क्षुद्र नहीं समझ रहा। भैया! आज मेरी हीन भावना समाप्त हुई। आज मैं आपके साथ खड़ा हूँ। आप देश के लिये शास्त्र उठाएँगे और मैं शस्त्र। चलिये! माँ से विदाई ले लें।"

अणिमा और रक्षिता ने जब ये समाचार सुना तो वे सिसकने लगीं। मिश्रकेशी ने बहुओं को समझाते हुए कहा : "ऐसे समय नहीं रोते। यह समय रोने का नहीं। रोने से अनर्थ होता है। पुरुषों का हृदय निर्बल पड़ जाता है। देश ने प्रथम बार कुछ मांगा है। अपने पुरुषों को हँस कर विदा दो।"

रक्षिता चुप हो गई। अणिमा अपने ऊपर नियन्त्रण न रख सकी।

शकुन्त ने अन्दर जा रक्षिता से कहा : "रक्षिता! स्मरण है न! जब मैं प्रथम बार राजधानी गया था। तुमने रोते हुए कहा था—शीघ्र लौट आना। मैंने कहा था—मैं कोई युद्ध के लिए तो नहीं जा रहा। उत्सव के लिए जा रहा हूँ। दूसरी बार मैं बँधा हुआ गया। अब तीसरी बार जा रहा हूँ—युद्ध के लिए। मैं शीघ्र ही शत्रुओं का दमन कर लौटूँगा। और देखो नवागन्तुक का ध्यान रखना।" रक्षिता ने दृष्टि नीचे करते हुए कहा : "मैंने त्रिगर्त्तदेश में ऐसे अवसर देखे हैं अतः मैं रोऊंगी नहीं। हँसते हुए विदा करूँगी। और लो....", उसने धोती के छोर की गाँठ खोलते हुए कहा : "जब पहली बार गये थे तो मैंने कुछ सोना दिया था। आप जिस तरह उसे लौटा लाए, इसे भी लौटा लाना।"

शकुन्त ने देखा—सम्पूर्ण आयुधों से सुसज्जित क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार करने वाले महान् योद्धा भगवान् परशुराम की सोने की प्रतिमा।

अणिमा शलभ को देख रुलाई न रोक सकी। नन्हीं कन्या को उसने वक्ष से सटा लिया। शलभ ने बच्ची को सहलाया और बोला : "अणिमा! इसका

ध्यान रखना। मैं शीघ्र लौटूँगा।" अणिमा के मुँह से कोई शब्द नहीं निकल पा रहा था। रक्षिता ने कहा: "बहन! यह समय रोने का नहीं। मैंने त्रिगर्त्तदेश में वीरों को विदा करते देखा है। ऐसे समय हँसना चाहिये।"

उसी समय मिश्रकेशी आ गई। बोली: "बेटा! जाओ, प्रसन्नता से जाओ। युद्ध में कभी पीठ न दिखाना। जब वज्रदत्त और क्षत्रदेव गये थे तो उनकी माँ ने पता है क्या कहा था?....कहा था—क्षत्राणियाँ जिस समय के लिये पुत्र उत्पन्न करती हैं, वह समय आ गया है। मैं भी क्षत्रिय की बेटी हूँ। अतः कहती हूँ। बेटा! समय आ गया है। शलभ! तुम शास्त्र विधि द्वारा युक्ति से मन्त्रणा करना और शकुन्त! तुम शस्त्र उठा शत्रु से लोहा लेना।"

वसुदान, शलभ और शकुन्त तीनों चले गये। ग्राम-भर की औरतों, बूढ़ों बच्चों ने उन्हें विदा दी।

सभी ने बैलों, गाड़ियों को कसा। बच्चों, स्त्रियों ने भी थोड़ा-थोड़ा सामान उठा लिया। जाने की तैयारी हो गई।

अपने-अपने घरों को छोड़ते हुए सबकी आँखों में आँसू आ गये। कदम बढ़ाये नहीं बढ़ते थे। सभी बार-बार पीछे देख रहे थे।

बैलगाड़ियों की चीं-चीं, गौओं के रम्भाने के स्वर, बछड़ों के पुकारने के शब्दों ने सुरेणु को पार किया। पशुओं ने जी भर-कर सुरेणु का जल पिया। स्त्रियों ने रोते हुए सुरेणु के जल की वन्दना की, पूजा की। पार होने से पहले वृकस्थल की भूमि की वन्दना की। बड़ी कठिनाई से पुष्कर तथा स्यूमरश्मि ने गौओं के अभ्यस्त कदमों को वन की ओर जाने से रोका।

निर्जन गाँव में कौए, कबूतर और नन्हीं चिड़िया व्याकुलता से मँडरा रहीं थीं। जाजलि ऊँचे स्थान पर खड़े हो ग्रामीणों को दूर होते देख रहे थे।

अपने-अपने श्वास रोके यह जनसमूह शालियवन की ओर उतरने लगा।

: f ़ गांव मे जीवन था, सायं होते-होते मृतप्राय: हो गया। बूढ़ा बरगद योगी-सा खड़ा था जो उजड़े घरों की व्यथा समझता था। न वन से

आती गौओं के रम्भाने की आवाज, न बच्चों का शोर, न स्त्रियों का मधुर कण्ठ, न मन्त्रोच्चारण की ध्वनि। सब मौन था। शान्त था।

रात्रि की गहनता ने परित्यक्त वृकस्थल को घेर लिया। केवल एक घर से झाँकती प्रकाश की रेखा किसी गहन वन में विरक्त संन्यासी की सूचना दे रही थी। वृकस्थल और वन में कोई भिन्नता नहीं रह गई थी।

# ९

रात्रि ठिठुरने लगी थी। ओस की बूँदें ठिठुरन का प्रमाण थीं। हरी रेशमी चादर पर नन्हीं-नन्हीं अनगणित बूँदें थीं। प्रभाकर भी प्रभा करने से पहले ही घटा से घिर गया था। कहीं न चिड़ियों के चहचहाने ने भोर होने की सूचना दी थी न चुंधिया देने वाले उजाले ने ही। रात्रि के अन्धकार में न जाने कितने विनाशकारी संकल्प पनपे होंगे कि असहाय प्रकृति रो पड़ी और ओस के मोती आँखों से चू पड़े। जिन्हें तेजस्वी भास्कर भी अभी तक पोंछ नहीं पाया था। विवश-सा सूर्य होठों पर क्षीण मुसकान ला धरा की ओर झाँकने का प्रयत्न करता, परन्तु शीघ्र ही काली घटा से घिर जाता। सुखमय प्रभात निशा के किए पर पश्चाताप कर रहा था और प्रकृति का रोना अब सिसकने में बदल गया था।

ग्राम के बूढ़े-बच्चे, स्त्रियाँ शालियवन के समीप ही एक विशाल बरगद के नीचे रात भर पड़े रहे। प्रातः ही पुष्कर तथा स्यूमरश्मि ने शालियवन से आगे उपयुक्त स्थान ढूँढ किसी तरह आश्रम बनाए और सबको वहाँ पहुँचा दिया। कोई किसी पेड़ के नीचे, कोई बड़े से पत्थर के साथ, कोई चार बाँसों के आश्रम में; जिसको जहाँ स्थान मिला, जम गया।

शालियवन से गुजरती बार मिश्रकेशी केशिनी से भी मिली। प्रभास भी रणक्षेत्र जा चुका था।

संध्या के समय जाजलि ग्रामवासियों को ढूँढते हुए वहाँ आ पहुँचे।

पुष्कर ने पूछा : "कहिये ! क्या समाचार हैं ?"

"समाचार वही है जो मैं कई दिनों से सोचता आ रहा था। मैं आज कुरुक्षेत्र में आगे तक गया था। वहाँ आस-पास दूर-दूर तक सेनाओं के शिविर बन गये हैं रथ, हाथी, घोड़ों से पृथ्वी काँप जाती है। दृष्टि की सीमा तक

सैनिक और वाहन ही दिखते हैं। युधिष्ठिर ने समन्तपंचक क्षेत्र के आस-पास अपनी सेना का डेरा डाला है। उनके पक्ष में सात अक्षौहिणी सेना है। हमारे महाराज की ओर ग्यारह अक्षौहिणी। सम्पूर्ण पृथ्वी वीरों से सूनी हो गई है। भारत का कोई भी कोण नहीं बचा है, जहाँ से राजा सहित सेना न आई हो।"

"सुना है, धर्म-युद्ध होगा।" स्यूमरश्मि बोले।

"धर्म-युद्ध? हाँ, सुना मैंने भी है कि दोनों पक्षों ने युद्ध के नियम निश्चित किए हैं। परन्तु युद्ध जैसे भयंकर शब्द के साथ धर्म का जुड़ना अस्वाभाविक-सा है।"

"कुरुवंश के योद्धा सदा ही धर्मसंगत युद्ध करते आए हैं। आपस में भी वे धर्मयुद्ध ही करेंगे।" पुष्कर बोले।

"तुम्हारे धर्म का भी पता लग जाएगा।" जाजलि ने मुँह फेरकर कहा।

जाजलि लौट गये। दूसरे दिन स्यूमरश्मि को भी बुला लिया गया। वह ग्रामाध्यक्ष का कार्य-पद पुष्कर को सौंप विदा होने लगा। पुष्कर ने खिन्न मन से कहा : "जब ग्राम ही नहीं रहा तो ग्रामाध्यक्ष क्या!"

"चिन्ता न करिये भगवन्! युद्ध समाप्ति पर हम पुनः अपने ग्राम लौटेंगे।"

☐

युद्धारम्भ का समय निकट आता गया। दिन सिकुड़ रहे थे। रात्रि अपनी विकरालता और विशालता से समस्त प्राणियों को ढक लेती। प्रायः दिन में धूलभरी आँधी चलती। चारों ओर वातावरण में धूल ही धूल छाई रहती। नए पत्तों, फूलों पर धूल जम गई थी।

न गर्मी थी न सर्दी; ऋतु बीच में ही अटक गई थी।

कार्तिक की पूर्णिमा। चाँद तो निकला, किन्तु वातावरण में धूल होने से न चाँद सुन्दर लग रहा था न अम्बर। पीला चाँद क्षय से पीड़ित निर्बल व्यक्ति-सा पूरी रात सुबकता रहा।

एक प्रातः! रणभेरि, शंख, नगारों की गड़गड़ाहट ने समस्त कुरुक्षेत्र को

कँपा दिया। एकाएक युद्धसूचक वाद्यों का घोर शब्द हुआ जो दसों दिशाओं को विदीर्ण करता हुआ बन्द हो गया।

सभी आशंका से सिहर उठे। चेहरों के रंग उड़ गये। जो काम कर रहे थे उनके हाथ वहीं के वहीं रुक गये। पुष्कर के सूर्य-वन्दना के लिये उठे हाथ उठे ही रह गये। अणिमा ने अपनी बच्ची को सटा लिया। रक्षिता मुरझाई-सी मिश्रकेशी से लिपट गई। जो बात कर रहे थे उनके मुँह खुले ही रह गये। रोते हुए शिशु एकदम चुप हो गये। गौओं ने कान खड़े कर दिये।

कुछ समय शान्ति रही। लोगों के मन में हर्ष की कली खिली। कुछ क्षणों के लिये उन्होंने अपने रोके हुये श्वास धीरे-धीरे छोड़ दिये।

एक मुहूर्त के पश्चात् एकाएक कोलाहल हुआ। शंख, नगारे, ढोल-मृदंग, नरसिंगों के शब्द ने आकाश को विचलित कर दिया। उसके तुरन्त बाद नर-कोलाहल आयुधों के टकराने की आवाज, प्रत्यंचाओं की भीषण टंकार।

सभी उत्सुकता से जाजलि की प्रतीक्षा कर रहे थे, परन्तु वे उस दिन नहीं आ सके।

दूसरे दिन प्रात: ही जाजलि पहुँच गये।

"दोनों सेनाओं का भीषण संग्राम छिड़ गया है पुष्कर! अब परिणाम भयंकर ही होगा।" पुष्कर शिर झुकाये बैठे थे।

"लगता है, वीरों के विनाश का समय आ गया है।.... युद्धारम्भ के समय एक बार बिल्कुल शान्ति हो गई थी। क्या बात थी?" पुष्कर ने शिर उठा पूछा।

"भीषण संग्राम छिड़ने से पहले महान् धनुर्धर अर्जुन को मोह उत्पन्न हो गया था। युद्ध के लिये खड़े अपने ही ताऊ-चाचों, दादों-परदादों, गुरुओं, मामों, भाइयों तथा सुहृदों के स्वजन समुदाय को देख उन्होंने धनुष-बाण फेंक दिये। कहते हैं श्रीकृष्ण ने उन्हें उपदेश देकर युद्ध के लिये खड़ा किया।"

श्रीकृष्ण पाण्डवों के पक्ष में हैं। वे बड़े कुशल नीतिज्ञ एवं पराक्रमी हैं। केवल उन्हीं के आधार पर तो पाण्डव संग्राम के लिये उद्यत हुए है।" जाजलि लौट गए।

जहाँ कभी राजा कुरु ने लोक-कल्याण के लिये यज्ञ किया था; उस क्षेत्र में कौरवों-पाण्डवों का भीषण नरमेध यज्ञ आरम्भ हो गया था। प्रतिदिन युद्धस्थल बढ़ता ही जाता। सुबह दोनों सेनाएँ एक ही स्थान पर कभी मकरव्यूह तो कभी क्रौंच, कभी दैवव्यूह: तो कभी दैत्यव्यू का निर्माण करतीं। सूर्य के चढ़ने के साथ सेना तितर-बितर हो जाती। उन्मत्त वीरों का तुमुलनाद बढ़ता जाता और सेनाएँ विशाल क्षेत्र में फैल जातीं।

तीसरी सध्या जाजलि फिर आए।

"आज बहुत भयंकर युद्ध होने के समाचार सुने हैं। कहते हैं, शान्तनुनन्दन भीष्म पाण्डव सेना का संहार कर रहे हैं। धनुर्धर अर्जुन भी उनका सामना नहीं कर पा रहे। आज तो श्रीकृष्ण ने घोड़ों की रास छोड़ सुदर्शन-चक्र ले भीष्म को मारने को उद्यत हो गये थे।"

"परन्तु उन्होंने तो शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की थी।" पुष्कर चौंके।

"जब भीष्म के सामने अर्जुन ढीले पड़ गये तो श्रीकृष्ण को बड़ा अमर्ष हुआ और वे अपने चक्र का स्मरण कर भीष्म के वध की इच्छा से दौड़े। परन्तु अर्जुन ने बलपूर्वक उन्हें रोक लिया।"

"वास्तव में श्रीकृष्ण अर्जुन के ही नहीं समस्त पाण्डवों के सारथि हैं। सबकी बागडोर इन्हीं के हाथ में है। परन्तु एक बात है। यदि भीष्म इसी तरह पाण्डव-सेना का संहार करते रहे तो हमारे महाराज की जीत निश्चित है।" पुष्कर प्रसन्नता से बोले।

□

धीरे-धीरे लोग प्रतिदिन के युद्ध-कोलाहल से अभ्यस्त हो गये। सातवें दिन पुन: समाचार मिला कि श्रीकृष्ण चाबुक लेकर ही भीष्म की ओर दौड़ पड़े हैं।

दसवें दिन अकस्मात् रणक्षेत्र की ओर से भीषण कोलाहल सुनाई दिया। सेनापति भीष्म युद्धभूमि में गिर गए थे और बाण-शय्या पर शयन कर रहे थे।

कौरव सेना में हा-हा-कार मच गया। पुष्कर के मन में भी प्रथम बार सन्देह उठा। रक्षिता-अणिमा सहम गईं।

पुष्कर ने कहा : "शकुन्त बड़ा हठी है। क्रोध भी उसे शीघ्र आता है। वह युद्ध में कभी पीछे नहीं हटेगा। शलभ तो सम्भव है, शिविर की संचालन व्यवस्था में हो।"

"पैदल सेना को बड़ा भय रहता है।" रक्षिता ने हौले से कहा।

"वसुदान तो घुड़सवारों में होंगे। वे घोड़े पर सवारी करना जानते हैं। पहले तो उन्होंने घोड़ा भी पाला था।" मिश्रकेशी बोली।

सबके हृदयों में एक शंका और भय समा गया। जाजलि अब आ नहीं पाते थे।

तेरह दिन बीत गये। अब युद्ध का कोलाहल, धमाके, दिव्यास्त्रों के प्रयोग के समय प्रकाश रात्रि की नीरवता को भी आन्दोलित करने लगा था। रात्रि के समय कोलाहल बहुत बढ़ जाता था। धमाके होते तो लगता पृथ्वी फट जाएगी। प्रकाश-पुंज चमकते तो सहस्रों बिजलियों के समान।

भीष्म के बाद आचार्य द्रोण सेनापति बनाए गए। बारहवें दिन पाण्डव पक्ष का बालक अभिमन्यु और तेरहवें दिन कौरव पक्ष के जयद्रथ का वध हो गया।

□

"बालक अभिमन्यु को छः महारथियों ने घेरकर मार दिया।" जाजलि ने कहा।

"छः महारथियों ने ? यह तो अन्याय है।" पुष्कर बोले।

"मैंने कहा था न ? युद्ध के साथ धर्म शब्द नहीं जुड़ता। भीष्म को पाण्डवों ने छल से मारा। उनकी सेना में शिखण्डी नाम का नपुंसक है। महात्मा भीष्म नपुंसक, स्त्री, जो भाग रहा हो, जो शरण में आ गया हो, जिसके एक ही पुत्र हो; इन पर शस्त्र नहीं उठाते। पाण्डवों ने उसे आगे कर अर्जुन द्वारा उन्हें बाणों से आच्छादित कर दिया।"

"युद्ध वास्तव में भयंकर ही होता है।"

"और सुनिए! जब अभिमन्यु का वध हुआ तो अर्जुन संशप्तकों से युद्ध करते दूर निकल गये थे। वापस आकर जब उन्हें पुत्र की मृत्यु का समाचार मिला तो वे व्याकुल हो गये और क्रोधपूर्वक प्रतिज्ञा की कि यदि वे सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ को, जो अभिमन्यु के वध का कारण बना था; यदि न मार गिराएँ तो अग्नि में प्रवेश कर जाएँगे।"

"अग्नि में प्रवेश! इतना भयंकर संकल्प!"

"और जब जयद्रथ बादलों में छिपे अस्त होते सूर्य को देख रहा था, अर्जुन ने उसका मस्तक उड़ा दिया।"

"लगता है, अब युद्ध रात को भी होने लगा हैं।" पुष्कर बोले।

"हाँ! अब संग्राम पराकाष्ठा को पहुँच गया है। विजयाभिलाषी वीर उन्मत्त हो रात को भी नहीं बैठते।" जाजलि लौट गए।

रक्षिता का मन अनर्थ की आशंका मे काँप उठा।

"अभिमन्यु सोलह वर्ष का था। अभी छः माह पूर्व विराट की पुत्री उत्तरा से उसका विवाह हुआ था।" पुठकर ने कहा।

"केवल छः माह पूर्व····" रक्षिता बुदबुदाई।

"उत्तरा गर्भवती है।" पुष्कर ने खिन्न मन से कहा।

रात्रि का अन्धकार बढ़ गया। रणक्षेत्र का कोलाहल रक्षिता के कानों के पर्दे भेद रहा था। उसे कुछ झपकी आ गई। भूतकाल के दृश्य स्वप्न बन उसकी बन्द पलकों में विचित्र होने लगे।····शकुन्त ने उनका निवास-स्थान बनाने में सहायता करदी है। वह जाने लगा है···· "और किसी वस्तु की आवश्यकता पड़े तो हमें कहना।"' वह उसे आतिथ्य देने को कहती है।····

"एक अतिथि का आतिथ्य! क्षमा करिये।"

"अच्छा, एक बात बताएँ! आप असमय ही आश्रम क्यों छोड़ आए?" वह लज्जित हो जाता है।

"ऐसे ही। तथ्य यही है कि मेरा मन वेदाध्ययन में नहीं लगता। मेरी रुचि धनुर्वेद की ओर है।"

"धनुर्वेद की ओर ! यदि आप त्रिगर्त्तदेश में होते तो आज तक सेना में होते...."

रक्षिता को वर्तमान युद्ध का भान हो गया। सुप्त अवस्था में उसे युद्ध का कोलाहल सुनाई देने लगा।....शकुन्त सैनिक-वेश में शत्रुओं पर धावा बोल रहा रहा है।

उसने करवट बदली।........"सुनिए ! आप संध्या के समय वन की ओर अवश्य जाते हैं। क्या बात है ?"

"संध्या के समय मुझे भला लगता है। कभी कभी लकड़ियाँ ले आता हूँ। गौओं को ग्राम की ओर रम्भाती हुई आते देखता हूँ। पक्षियों के समूहों को चहचहाते हुए वन की ओर जाते देखते हूँ और........और डूबते सूर्य को देखता हूँ।"

"डूबते सूर्य को ! डूबते सूर्य को देखना तो बुरा बताया गया है।"

"परन्तु मुझे भला लगता है। बहुत भला ! किरणें कई रंग बिखेरती हैं और...और उनमें शक्ति नहीं रहती डूबते सूर्य की ओर दृष्टि भर कर देखा जा सकता है।"

रक्षिता पुनः युद्धभूमि में पहुँच गई। रणभेरि का स्वर, शंखनाद, वीरों की सिंहनाद।....अर्जुन की प्रतिज्ञा। दोनों पक्षों में से एक का सूर्य डूबना निश्चित है। यदि जयद्रथ मारा गया तो कौरवों के एक महारथी का वध ! यदि अर्जुन अग्नि में प्रवेश कर गया तो पाण्डव पक्ष मरणासन्न !

सूर्य डूबने को आया। एक बादल ने उसे घेर लिया। किरणें शक्ति-हीन, श्रीहीन हो गईं ! चारों ओर पीलापन छा गया।

जयद्रथ सिर उठाये डूबते सूर्य की ओर देखता है। रक्षिता को कभी वह जयद्रथ लगता है कभी शकुन्त।

अकस्मात् शीघ्रता से बादल हटता है। एक तीव्र किरण जयद्रथ की.......नहीं शकुन्त की आंखें बन्द कर देती है। तभी एक वज्र के समान बाण उसका मस्तक काट बाज की तरह ले उड़ता है।

"शकुन्त ! शकुन्त !" रक्षिता चिल्लाई। मिश्रकेशी, अणिमा जाग

गई ! रक्षिता एकदम उठ बैठी ।

"मांजी ! शकुन्त ! कहाँ हैं वे·······उनको मैंने ······मैंने उनको···· माँ ।·······" वह फफक्-फफक् कर रो पड़ी ।

"मन छोटा मत करो बेटी ! युद्ध के समाचारों से विचलित तुम्हारे मन में शान्ति नहीं है । इसी कारण तुम्हें दु:स्वप्न आ रहे हैं ।" उसने मिश्रकेशी की गोदी में मुँह छिपा लिया । वह उसके बालों में हाथ फेरने लगी ।

"व्यर्थ चिन्ता मत करो बहन ! बुरे विचार मन से निकाल दो ।" अणिमा ने कहा । अणिमा की बच्ची रोने लगी ।

पुष्कर बाहर सोए थे । वह भी उठ बैठे—

"बेटी ! तुम्हारे लिये शोक करना उचित नहीं । तनिक सोचो, तुम गर्भवती हो ।" मिश्रकेशी ने उसे सहलाया ।

पुष्कर ने गहरा नि:श्वास छोड़ आकाश की ओर देखा । युद्ध स्थल की ओर धमाका हुआ । आकाश से एक तारा शीघ्रता से पृथ्वी की ओर लुढ़क गया ।

मिश्रकेशी का दिल भी जोरों से धड़क रहा था । परन्तु बहुओं के सामने वह एक शब्द भी नहीं कह पा रही थी । बाहर पुष्कर करवटें बदल रहे थे ।

रक्षिता भी लेट गई । उसके विचारों में बार-बार वही दृश्य उभर रहा था । वह मन को हटा नहीं पा रही थी । बार-बार दो ही दृश्य उभरते— गर्भवती अबला उत्तरा·······डूबते सूर्य को देखता जयद्रथ ।

□

कौरव सेना की निरन्तर पराजय हो रही थी । सेनापति द्रोण का वध हो गया । महारथी कर्ण—कौरवों की रही-सही प्रतिष्ठा, गौरव, और बल लिये रथ का पहिया धरती से उखाड़ता हुआ-मारा गया ।

मद्रराज शल्य-नकुल-सहदेव के मामा-को सेनापति बनाया गया—कौरव-पक्ष का अन्तिम रथी ।

जाजलि एक दिन परम्परा के विपरित संध्या या प्रातः न आकर दोपहर

को ही आ गये। वे पहले से दुर्बल हो गए थे। आँखें न सो सकने के कारण लाल हो गईं थीं।

थके से एक पत्थर पर बैठते हुए वे बोले : "पुष्कर! दुर्योधन का अन्तिम समय आ गया है। कहते हैं, सबने इसे समझाया परन्तु यह न माना। यह राजा प्रजा को भी ले डूबा। इसका तो त्याग ही उत्तम था।"

"बन्धु! इसी के राज्य में हम जन्मे, पले। अनेक सूत्रों से हमें इसने बाँध रखा है। भीष्म, द्रोण, कर्ण सभी जानते थे कि दुर्योधन अपने हठ के कारण सम्पूर्ण पृथ्वी के वीरों को मृत्यु की ओर सरका रहा है। फिर भी वे उसके पक्ष में रहे। क्यों?··· क्योंकि पुरुष अर्थ का दास है। अर्थ किसी का दास नहीं। इसी अर्थ से कौरवों ने इन सबको, हम सबको बाँध रखा है।"

"अब मद्रराज शल्य रह गये हैं। देखो, क्या बनता है?"

"बनेगा क्या! अब विनाश ही समझो।" पुष्कर बोले।

जाजलि ने उनके चेहरे की ओर ध्यान से देखा।

"यह तुम कह रहे हो पुष्कर!····आज तुम्हें कहना ही पड़ा। कुलकलंक दुर्योधन ने राजा कुरु के बंश की दो शाखाएँ बना दीं। कुरु से 'कौरव' शब्द की एकता समाप्त कर इसने बलपूर्वक पाण्डु से 'पाण्डव' अलग शाखा कर दी। स्वयं कौरव बने रहकर अपने पूर्वजों के नाम को कलंकित किया। अब इतिहास कहेगा—कौरव और पाण्डवों में युद्ध हुआ।" जाजलि चुप हो गये। पुष्कर भी मौन थे

"आपने अपने ग्रामवासियों का पता भी लगाया?" मिश्रकेशी ने पूछा।

"कुछ ज्ञात नहीं हो रहा कि कौन जीवित है कौन नहीं। समाचार बुरे ही हैं। कौरवों की बहुत कम सेना शेष है।" जाजलि ने चिन्तातुर हो कहा।

"माँजी! आजकल रात्रि में एक तो कोलाहल से नींद नहीं आती, दूसरे बुरे स्वप्न आते हैं। मेरा मन डूबता जा रहा है। तरह-तरह की शंकाएँ उठती हैं।" रक्षिता ने कहा।

"बेटी! यह सब मन की अस्वस्थता के कारण ही है। तुम व्यर्थ चिन्ता न करो। सब ठीक हो जायेगा।

"बेटी ! तुमने तो यह सब देखा है । फिर क्यों घबराती हो ?....तुम भी सच्ची हो। पहले तुमने केवल देखा ही था । अब स्वयं भोग रही हो।" जाजलि धीमे से बोले ।

कुछ समय पश्चात् जाजलि चुपचाप उठे और बिना किसी से कुछ कहे चल दिए।

मद्रराज शल्य भी युधिष्ठिर के हाथों मारे गये। राजा दुर्योधन अपने को रणक्षेत्र में अकेला जान भागकर द्वैतवन के एक सरोवर में छिप गया। पाण्डवों ने उसे ढूँढ़कर भीम द्वारा गदा-युद्ध में गिरा दिया।

भीम ने गदा के प्रहार से दुर्योधन की जंघाएँ तोड़ अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। ग्यारह अक्षौहिणी सेना का स्वामी, कौरवों का राजा दुर्योधन भी समन्त पंचक क्षेत्र में धूल के साथ लोट गया।

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने दुर्योधन की निरीह अवस्था देख कुपित हो आचार्य कृप तथा कृतवर्मा की सहायता से पाँच पाण्डवों, श्री कृष्ण तथा सात्यकि को छोड़ समस्त बचे-खुचे योद्धाओं को सोते हुए ही पीट-पीट कर मार डाला।

रणक्षेत्र के वीरों में बचे पाँच पाण्डव, श्रीकृष्ण तथा सात्यकि और कौरव पक्ष में कृपाचार्य, कृत वर्मा तथा अश्वत्थामा।

अठारह दिन के भीषण रक्तपात ने पृथ्वी वीरों से विहिन कर दी।

वृकस्थल का कोई योद्धा न लौटा था। केशिनी का पति प्रभास भी नहीं लौट पाया।

सभी ने पुनः वृकस्थल लौटने की तैयारी की।

□

वृकस्थल में कुछ नहीं बचा था। रास्ते का कुछ भान नहीं रहा था। सभी घर ढह गये थे। स्थान-स्थान पर गड्ढे पड़े थे। सुरेणु की धारा का कहीं पता न था।

सभी ग्रामीण स्त्रियाँ अपनी-अपनी गृहस्थ ढूँढने लगी थीं। वहाँ कुछ भी पता नहीं लग रहा था। सबको अचम्भा था कि जाजलि वहाँ कैसे जीवित

रहे ! उनका आश्रम भी मिट्टी में मिल गया था। बूढ़ा वरगद अर्ध-विक्षित अवस्था में खड़ा दिशा का भान करा रहा था।

पुष्कर सिर थाम मलवे के ढ़ेर पर बैठ गये। अचानक एक दीवार के पीछे से जाजलि प्रकट हो गये। वे पागल से हो गये थे। ग्रामवासियों को इधर-उधर फैला देख वे चिल्लाये :

"अब यहाँ क्यों लौटे हो पुष्कर ! तुम्हारा ग्राम राख हो चुका है। दिव्यास्त्रों के प्रयोग से भूमि दग्ध हो चुकी है। मैंने अपनी आँखों से इसे झुलसते देखा है। यहाँ तो कई वर्षों तक घास भी नहीं उगेगी। पुष्कर ! जहाँ ब्रह्मास्त्रों का प्रयोग हो वहाँ बारह वर्ष तक वर्षा नहीं होती। यहाँ तो कई ब्रह्मास्त्रों, नारायणास्त्रों का प्रयोग हुआ है।"

पुष्कर चुप बैठे रहे। जाजलि पुन: दीवार की ओट में हो गये। जैसे उन्हें ग्रामीणों का लौटना असह्य लगा हो। रक्षिता ने होठ बन्द कर लिये थे। वह मन ही मन सब स्वीकार कर चुकी थी। अणिमा आँसुओं को रोक नहीं पाती थी।

ग्रामीणों ने पुन: वन के सुरक्षित बचे भाग में डेरा जमा दिया। पुन: आश्रम बनाए गए। अपना-अपना सिर छुपाने के लिये सबने व्यवस्था की।

दूसरी संध्या : शलभ लौट आया। केश बिखरे हुए, दाढ़ी बढ़ी हुई, उतरा चेहरा।

सभी एकत्रित हो गये। "बेटा ! शकुन्त कहाँ है ?" माँ ने पूछा। "शकुन्त नहीं आया पीछे आ रहा होगा।" अणिमा ने प्रसन्नता से कहा। रक्षिता ने खोजती निगाहों से पूछा। पुष्कर दूर तक दृष्टि दौड़ा रहे थे। शलभ बाँस का सहारा ले खड़ा हो गया।

"वह ···वह कभी नहीं आएगा माँ ! कभी नहीं····रक्षिता ! मुझे क्षमा····।" सहसा शलभ का कण्ठ रुँध गया।

रक्षिता पछाड़ खा गिर गई। पुष्कर फटी-फटी आँखों से देखते रह गये। मिश्रकेशी का चेहरा कठोर हो गया।

पता नहीं कब जाजलि वहाँ पहुँच गये थे। वे बुदबुदाने लगे :

"शकुन्त नहीं लौटा ! ·· वसुदान, वज्रदत्त, क्षत्रदेव कोई भी नहीं लौटा। ····पुष्कर ! दुःखी मत होओ। मैंने ऐसे दृश्य देखे हैं। मेरा मन अब कठोर हो गया है।····उन लोगों ने····उन लोगों ने संग्राम में प्राण त्याग कर वीरगति पाई है ·· अक्षय लोकों की प्राप्ति की है।"

"कल सभी युद्धभूमि में जाएँगे। महाराज युधिष्ठिर भी राजधानी की अबला स्त्रियों को ले रणक्षेत्र आ रहे हैं। सभी वहाँ अपने-अपने स्वजनों के शवों को ढूँढेंगे।" शलभ ने धीमे से कहा।

"अपने-अपने शवों को ढूँढेंगे ··।" पुष्कर ने दोहराया।

सभी रक्षिता को सांत्वना देने लगे। उसने दोनों हाथों से मुँह ढाँप लिया। रूखे केश बिखर गये।

जाजलि ने कहा : "बेटी ! तुम तो यह सब देख चुकी हो। इतना शोक क्यों करती हो ? शकुन्त ने स्वर्ग प्राप्त किया है।"

जाजलि पुष्कर-शलभ के कहने पर भी अन्य ग्रामिणों के साथ नहीं ठहरे। वे पुनः उसी व्यथित, क्षतित वृकस्थल में लौटने लगे।

वृकस्थल के पार का वन कुछ दूरी तक तहस-नहस हो गया था। सुरेणु के पास केवल एक सूखा पेड़ रह गया था।

हरे-भरे वृक्षों के झुण्ड से दूर अलग-सा, वह सूखा पेड़ मौन तपस्वी-सा संसार से विरक्त विचारमग्न खड़ा था। क्रूर, हृदयहीन कालचक्र ने उसकी हरी-भरी शाखाएँ उसके शरीर से सदा के लिये अलग कर दी थीं और उसका कठोर हुआ शरीर फिर नर्मी व नवीनता को न देख सका। मस्त वृक्षों का समूह झूम रहा था परन्तु ठूँठ पर हवा का कोई प्रभाव न था। उसमें फल-फूलों से लदी शाखाएँ नही जो मन्द पवन से झुक जाएँ। कोई पक्षी उस पर बैठ गा नहीं सकता। उस पर बैठेगा तो मृतकों की तलाश में दृष्टि दौड़ाता नहीं सकता। उस पर बैठेगा तो मृतकों की तलाश में दृष्टि दौड़ाता कोई गिद्ध—अपने पैरों से कसकर उसका आलिंगन किए, अपने पँखों में गर्दन छुपाए, तीव्र दृष्टि से कहीं दूर तकता हुआ।

कोई गिद्ध—अपने पैरों से कस कर उसका आलिंगन किए, अपने पँखों में गर्दन छुपाए, तीव्र दृष्टि से कहीं दूर तकता हुआ।

उसे दूसरों के फूलने से कोई ईर्ष्या नहीं, क्योंकि वह जनता है कि सभी एक दिन उसी अवस्था को पा सकते हैं। उसी की ही तरह उनमें से किसी एक पर कोयल मधुर गान नहीं गायेगी, पक्षी फुदक-फुदक नहीं चहचहाएँगें। हाँ, कोई एक गिद्ध उससे सहानुभूति प्रकट करता हुआ, किसी सोच में डूब अपनी गर्दन छुपा कर बैठ जाएगा या कभी-कभार भूख से व्याकुल कौआ इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने के लिये उसकी ऊँची चोटी पर या लम्बी सूखी डाल, पर बैठेगा—और वह भी उसी की ही तरह बिना हिले-डुले शान्त भाव से अतीत की कल्पना में खोया हुआ निर्विकार, निश्चल, निश्चेष्ट रहेगा, क्योंकि वह भी उस क्षण के लिए बन जाएगा—एक ठूंठ।

जाजलि ने गहरा श्वास छोड़ा और अपने खण्डहर की ओर कदम बढ़ा दिए।

युद्ध क्षेत्र कुरुक्षेत्र, जहाँ एक समय राजा कुरु ने स्वयं दोनों संध्याओं के समय हल चलाया था, आज हाहाकार कर उठा था। उसी के वंशजों ने उसी क्षेत्र में शस्त्र चलाया। सर्पिणी के खुले मुँह से निकली लपलपाति जिह्वा-सी, सहस्त्रों वीरों का रक्तपान कर लाल हुई धरा फुंकारें मार रही थी।

यहाँ-तहाँ मृतक ही मृतक। किसी का धड़, किसी का सिर, किसी की टाँग-बांह। चारों ओर पड़े टूटे रथ, अपना-अपना यश लिये पताकाएँ। रक्त से लतपथ हाथियों के पहाड़, घोड़ों के ढेर। हर तरफ सूखा रक्त ही रक्त। मांसाहारी गीदड़, कुत्ते, गिद्ध, कौए मानवों से निडर हो शव घसीट रहे थे। सड़े शवों की सडाँध से नाक फटी जा रही थी।

पुष्कर-मिश्रकेशी, अणिमा-रक्षिता तथा अन्य ग्राम्य-स्त्रियाँ इस दृश्य को देख घबरा गईं। अणिमा ने दोनों हाथों से मुँह ढाँप लिया।

'कहीं भी शकुन्त का शव नहीं मिला।" जाजलि ने थके से स्वर में कहा। अकस्मात् रक्षिता चिल्ला उठी : "मैं ढूँढती हूँ......मैं ढूँढती हूँ

उनका शव·······।'' और वह पागलों की तरह दौड़ने लगी।

असूर्यम्पश्या राज-वधुएं लज्जा त्याग सम्पूर्ण क्षेत्र में फैली थीं। दूर-दूर से आई हुई अनाथ अललाओं के विलाप से आकाश सहम गया था।

एक ओर से शलभ भी आ गया। रक्षिता इधर-उधर दौड़कर शवों को उलट-पलट देख रही थी। उसके हाथ लाल हो गये थे। शलभ से उसकी यह अवस्था नहीं देखी गई। उसने दौड़कर उसे पकड़ लिया। "रक्षिता! इस तरह मत दौड़ो। तनिक सोचो तुम गर्भवती हो।"

वह एक ही क्षण में धरती पर लोट गई। उसके सारे शरीर, मैली धोती में सूखा-जमा हुआ रक्त लग गया। आँखों के आस-पास काली स्याही, गालों पर काले दाग और कहीं-कहीं लहू लगने से उसका चेहरा विकृत हो गया। मिश्रकेशी, अणिमा ने उसे बड़ी कठिनाई से सम्भाला।

सबने बड़ा प्रयत्न किया परन्तु शकुन्त के शव की पहचान नहीं हो सकी। पराजित् से पुष्कर सिर थाम बैठ गये। "वह बड़ा क्रोधी था····लगता है पहले या दूसरे ही····।" कहते-कहते वे चुप हो गये।

रक्षिता ठगी सी पड़ी थी। उसे समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे! केशिनी के पति प्रभास का शव मिल गया था। जाजलि ने कहा: "सुना है" कुछ वीर अज्ञात हैं। कुछ योद्धाओं का पता ही नहीं है।"

तभी एक ओर से सामगान की हृदयविदारक ध्वनि आने लगी। धूप-चन्दन की गन्ध से सड़ांध मिलकर घुटन पैदा करने लगी। एक पंक्ति में कई चिताएँ सजाई जा रहीं थीं। चन्दर, अगर, काष्ठ, घी, तेल तथा सुगन्धित द्रव्यों से सजी चिताओं में शव रखे जा रहे थे। देखते ही देखते उनमें आग भभक उठी। धूएं की गन्ध से दम रुकने लगा। स्त्रियों के रोने का स्वर तीव्र हो गया।

इस दृश्य को देख रक्षिता पुनः चिल्ला उठी: पिताजी! मेरा शकुन्त लाइये। नहीं तो मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी। यहीं खान-पान त्याग छोड़ दूंगी।"

"बेटी! धैर्य रक्खो। देखो, तुम्हारे सामने ही है यह भीषण संहार का दृश्य। सम्पूर्ण भारत के वीर मारे गये हैं। देखो, स्वयं वसुदान, उनके तरुण

पुत्र वज्रदत्त और क्षत्रदेव का कोई पता नहीं है। उनका तो वंश नाश ही हो गया। इन अनेक नव-विवाहित वधुओं को देखो। उत्तरा जैसी राजवधु को निहारो। इन रोती हुई वृद्धा, युवतियों की ओर तनिक दृष्टिपात करो। बेटी ! तुम्हें अपने लिये नहीं तो शकुन्त की वंश-रक्षा के लिये तो जीना होगा।''

वह पथराई आंखों से आकाश में फैलते धुएँ को देखती रही !

उसे बैलगाड़ी में बिठा सभी लौट आए।

# १०

शनैः शनैः पुनः वातावरण शान्त हो गया। कुरुक्षेत्र में रक्त-मांस के स्थान पर केवल धूल रह गई। अनेक रथी, महारथी, महान् धनुर्धर, सम्पूर्ण भारत के योद्धा धूल बन कर धूल में विलीन हो गये।

शस्त्र-निर्माता को छोड़ ग्राम के शिल्पी, थवई आदि सभी लौट आए। ग्राम में नव-निर्माण आरम्भ हो गया। भागे हुए पक्षी नई जगह लौट आए। सुरेणु का जल प्रकट हो गया। नई भूमि बीज मांगने लगी।

मंगलमय प्रभात होने में कुछ समय शेष था। भगवान् भास्कर प्रकट होने की तैयारी में थे। ब्रह्ममुहूर्त्त के समय एक ठिठुरते आश्रम से नवजात शिशु का रुदन सुनाई दिया।

एक जोड़ा चिड़िया आश्रम के बांस से निकल वायुमण्डल में चहचहाने लगी। आश्रम की फूस पर जमीं ओस की बूंदें प्रभात की प्रथम किरण से चमक उठीं। पुष्कर ने बाहर निकल सूर्य को नमस्कार किया और शीघ्रता से ऊपर की ओर बढ़ने लगे। खण्डहरों के बीच, बूढ़े बरगद के समीप एक छोटे से आश्रम के पास खड़े हो उन्होंने आवाज दी :

"जाजलि ! भगवन् ! आपका कल्याण हो ! बाहर निकलें। एक नवीन प्राणी इस पृथ्वी पर आया है।"

"नवीन प्राणी ! मंगल हो ! मंगल हो ! चलिए, शीघ्र चलिए।" वे उत्तरीय कन्धे पर फेंकते हुए बोले।

सूर्य की तेजोमयी किरणें सब ओर फैल गईं। शीत की ठिठुरन भय से भाग गई।

नये प्रकाश में नई भोर ने एक नये वृकस्थल और नये शकुन्त को जन्म दिया।

"देखो, बिल्कुल शकुन्त-सा लगता है।" पुष्कर ने कहा। यह सुन रक्षिता ने आँसू टपका दिये और बालक को चूम लिया।

"पुष्कर! मैं जानता हूँ। मेरी रक्षिता इस गर्भ की रक्षा के लिये यज्ञ की अग्नि-सी जली है।"

एक दिन राजकर्मचारियों ने सूचना दी कि महाराज धृतराष्ट्र वन जा रहे हैं। अतः अन्तिम विदाई के लिये उन्होंने सम्पूर्ण प्रजा को सादर आमन्त्रित किया है।

पुष्कर-जाजलि भी वन जाने को उद्यत हो गये।

समस्त ग्रामवासियों ने पुष्कर को विदाई दी। सभी उन्हें जाजलि के आश्रम तक छोड़ने आए। जाजलि ने भी अपना वृकस्थल छोड़ पुष्कर का साथ दिया।

सबसे अनुमति ले उन्होंने हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान किया और वहीं से वन जाने का निश्चय किया।

निश्चित दिन धृतराष्ट्र अन्तपुर से बाहर आए। वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। पुत्रों की मृत्यु के आघात ने उन्हें और भी दुर्बल बना दिया था। प्रजा को उपस्थित जान वे बोलने लगे: "बन्धुओ! मैंने गान्धारी सहित वन जाने का निश्चय किया है। महर्षि व्यास तथा राजा युधिष्ठिर से मैंने अनुमति ले ली है। आप सभी को यहाँ बुलाकर कष्ट दिया है। कृपया आप भी मुझे अनुमति दें। बन्धुओ! मेरा आप लोगों से पुराना प्रेम-सम्बन्ध चला आ रहा है। अब मुझे बुढ़ापे ने व्यथित कर दिया है। युधिष्ठिर के राज्य में मुझे सुयोधन के राज्य से भी अधिक सुख मिला है। परन्तु पुत्रों के शोक ने मेरी शान्ति छीन ली है। अतः वन जाने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।"

क्षण चुप रहने के पश्चात् उन्होंने पुनः कहना आरम्भ किया: "महाराज शान्तनु, विचित्र वीर्य तथा भीष्म और पाण्डु ने जिस प्रकार यह पृथ्वी सुरक्षित रखी है, वह आप जानते हैं। दुर्योधन ने भी प्रजा के साथ अन्याय नहीं किया। पाण्डवों से विरोध तो दूसरा पक्ष है किन्तु प्रजा का उसने भी भली प्रकार पालन किया है। मुझसे हुई भूलों को क्षमा करें। मेरे पुत्र के

अपराध व अभिमान से और मेरे अन्याय से सारी पृथ्वी वीरों से विहीन हो गई। मुझे वृद्ध और दु:खी जान क्षमा करें। मैं गान्धरी की ओर से भी क्षमा चाहता हूँ। आप हमें वन जाने की अनुमति दें। सर्वगुण सम्पन्न युधिष्ठिर आपकी महाराजा पृथु, रघु, राम तथा कुरु की तरह रक्षा करेंगे।" इतना कह कर धृतराष्ट्र ने मुख नीचा कर लिया।

सभी प्रजाजन मूक हो गये थे। किसी के कण्ठ से स्वर नहीं निकलता था। अन्त में उन्होंने आपस में परामर्श कर वर्धमानपुर के साम्ब को कहने पर विवश किया।

साम्ब ने कहा : "महाराज ! आपने तथा राजा दुर्योधन ने हमें पुत्र की [illegible] पाला है। जो भी आपने कहा उसमें असत्य लेशमात्र भी नहीं। आप निश्चित हो वन जाइये। दैव के विधान को तो कोई नहीं टाल सकता। आपके पुत्र ने हमें कोई कष्ट नहीं दिया। आपसी मतभेद तो अलग बात है। धर्मराज युधिष्ठिर ने भी प्रजा से स्नेह बढ़ा दिया है। आप जाइये। आपको सम्पूर्ण प्रजा नमस्कार करती है।"

महाराज धृतराष्ट्र प्रजा को नमस्कार कर बहुमूल्य वस्त्राभूषण त्यागने अन्दर चले गये।

प्रजा की भीड़ भी तितर-बितर होने लगी। पुष्कर अपने मित्र साम्ब से मिले। कुशल पूछने के पाश्चात् उन्होंने अपने वन जाने के विषय में कहा तो साम्ब बोले :

"भैया तुम चलो। मैं भी शीघ्र आने वाला हूँ।" दोनों मित्र व समधी गले मिले।

जाजलि ने गहरा नि:श्वास छोड़ते हुए कहा : "चलो पुष्कर ! चलते हैं। त्रिगर्त्तदेश से मैं युद्ध के भय से भागा था। परन्तु यहाँ जो अनेक त्रिगर्त्तदेशों के वीरों का संहार देखा तो तनिक भी भय नहीं हुआ। अपने जामाता की मृत्यु का शोक भी मुझे संतप्त नहीं कर रहा।"

"बन्धु ! मुझे तो कुछ भी समझ नहीं आता। राजा युधिष्ठिर इतना बन्धु-बान्धवों का संहार देख कैसे राज्यलक्ष्मी भोग रहे होंगे। कुरुक्षेत्र में

अबलाओं के विलाप ने उनका हृदय टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं कर दिया।"

"मनुष्य बहुत कुछ सह सकता है पुष्कर! बहुत सह सकता है। उसमें पृथ्वी-सी सहन शक्ति है, समुद्र-सी ग्रहण शक्ति है और आकाश के शब्द-सी सृजन शक्ति। वह राक्षस बन अपने ही जाति भाइयों का रक्त भी पी सकता है और देवता बन दूसरों के लिये अपने रक्त की परवाह नहीं करता। मनुष्य विचित्र प्रकृति का प्राणी है। तभी तो उसे चर और अचर दोनों प्रकार के प्राणियों सेश्रेष्ठ माना गया है।

Library
H 813.3 V 442 A
IIAS, Shimla
00065359